वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

एम.जे.एम.सी.-8
ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता
(Rural and Environment Communication)

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता 1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

एम. जे. एम. सी. - 8
ग्रामीण एवं पर्यावरण
पत्रकारिता

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता - 1

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

- **प्रो. जी. एस. एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा
  (अध्यक्ष समिति)
- **प्रो. ए. डबल्यू. खान**
  कुलपति
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  नई दिल्ली
- **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
- **डॉ. ओ. पी. केजरीवाल**
  महानिदेशक, महानिदेशालय आकाशवाणी
  नई दिल्ली
- **प्रो. ए. के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
- **प्रो. जे. एस. यादव**
  निदेशक
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
- **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
- **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
डॉ. महेन्द्र मधुप
संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण और प्रचार
राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, जयपुर
सचिव, इन्टरनेशनल सोसायटी फॉर एग्रीकल्चरल मार्केटिंग (अहमदाबाद)

भाषा संपादक
डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

पुनः उत्पादन - अगस्त, 2010

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है | व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित ।

एम. जे. एम. सी. -8

ग्रामीण एवं पर्यावरण पत्रकारिता

पाठ्यक्रम - 8
खण्ड - 1

1

इकाई 1 ग्रामीण जनसंचार की प्रकृति एवं क्षेत्र	8–30
इकाई 2 लोक माध्यम	31–48
इकाई 3 भारत के प्रमुख लोक माध्यम	49–64
इकाई 4 मौखिक परम्पराएं और लोक माध्यम	65–82

पाठ-लेखक

1. **प्रो. वहीद अहमद काजी**
   अध्यक्ष-भारतीय सूचना सेवा विभाग
   भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2. **ईश्वरदेव मिश्र**
   संपादक-जनवार्ता
   मवइया, सारनाथ
   वाराणसी
3. **डॉ. महेंद्र भानावत**
   लोक साहित्य विशेषज्ञ, लोककर्मी
   उदयपुर
4. **हमीदुल्ला**
   हिन्दी नाटककार
   जयपुर
5. **डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ**
   पूर्व सह आचार्य, हिन्दी विभाग
   सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर
6. **गोपाल गुप्ता**
   वारिष्ठ जनसंचार कर्मी
   नई दिल्ली
7. **चिरंजीलाल माथुर**
   संपादक 'समयकोण'
   जयपुर
8. **रमेशदत्त शर्मा**
   निदेशक-कृषि सूचना एवं प्रकाशन निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
9. **अनुपम मिश्र**
   निदेशक- पर्यावरण कक्ष
   गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
10. **शुभ पटवा**
    वरिष्ठ पत्रकार
    भीनासर, बीकानेर
11. **रजनी**
    उप संपादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी)
    नई दिल्ली
12. **डॉ. लक्ष्मीकान्त दाधीच**
    प्राध्यापक-वनस्पति विभाग
    राजकीय महाविद्यालय, कोटा
13. **डॉ. महेन्द्र मधुप**
    संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण और प्रचार
    राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड, जयपुर
14. **रामकुमार**
    स्वतंत्र पत्रकार, लेखक
    कोटा

खंड और इकाई परिचय

पाठ्यक्रम अष्टम् का प्रथम खंड आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसमे चार इकाइयां समाविष्ट है - 1. ग्रामीण पत्रकारिता की प्रकृति एवं क्षेत्र, 2. लोकमाध्यम, 3. भारत के प्रमुख लोकमाध्यम और, 4. मौखिक परम्पराएं और लोकमाध्यम। 'ग्रामीण जनसंचार की प्रकृति एवं क्षेत्र में ग्रामीण जनसंचार एवं इसके आयाम, प्रकृति, विकास, स्तर, लोक परंपराओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। दूसरी इकाई में लोकमाध्यमों का परिचय देते हुए डूंडी, कठपुतली, ख्याल, लोकगीत एवं नृत्य, पड़ (फड़), कावड़, भारत की लोककथाओं और लोककलाओं के बारे में बताया गया है। तीसरी इकाई 'भारत के प्रमुख लोकमाध्यम' में लोककथा, लोकनाट्य, लोकनृत्य और लोकगीत का परिचय देते हुए लोकमाध्यमों के भूतकालीन और वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण जनसंचार में लोकमाध्यमों का क्या योगदान है, यह भी बताया गया है। अंतिम इकाई 'मौखिक परंपराएं और लोकमध्यम' में लोक-वार्ता, बातपोशी, किंवदंती के विषय में जानकारी दी गई है। लोकमाध्यम के अंतर्गत विभिन्न ख्याल, तुर्रा-कलंगी, गवरी, रम्मत, जयपुर तमाशा, जात्रा (बंगाल), फड़, नौटंकी (उत्तर प्रदेश), तमाशा (महाराष्ट्र), बिदेसिया (बिहार), भवाई (गुजरात), यक्षज्ञान (दक्षिण), लीला और स्वांग के विषय में बताया गया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण लोक-जगत को इस खंड में प्रस्तुत किया गया है। इस खंड की सामग्री छात्रों के लिए उपयोगी होगी, ऐसी आशा है।

इकाई 1 ग्रामीण जनसंचार की प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 ग्रामीण जनसंचार एवं इसके आयाम

1.3 संचार की प्रकृति

1.4 संचार के स्तर

1.5 लोक परंपराएं

1.6 गांव को समझना

1.7 ग्रामीण संचार का विकास चक्र

1.8 सरकारी सूचना माध्यमों का योगदान

1.9 कृषि में सूचना की भूमिका

1.10 पत्रकारों एवं जनसंचार कर्मियों की भूमिका

1.11 राजस्थान में लोकप्रिय होती योजना - ओ वी. टी. सड़क निर्माण योजना

1.12 ग्रामीण- विकास की शब्दावली

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 उद्देश्य

ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंचार की प्रकृति एवं क्षेत्र का प्रश्न इसलिए कठिन है कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में यह अत्यधिक पिछड़ा और उपेक्षित है, यद्यपि भारत की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती है । इस इकाई में ग्रामीण जनसंख्या, उसकी समस्याओं, जनसंचार की आवश्यकताओं और विभिन्न सूचना माध्यमों की गांवों में पहुंच की स्थिति आदि की व्यापक चर्चा की गई है ।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

- ग्रामीण जनसंख्या के बारे में बता सकेंगे।
- ग्रामीणों की विभिन्न विशेषताओं की जानकारी दे सकेंगे ।
- ग्रामीण- जनसंचार की अवधारणा के बारे में परिचित हो सकेंगे ।
- गांवों की स्वतंत्र इकाई होने की पहचान करा सकेंगे ।
- ग्रामीण-जनसंचार के कार्यों से परिचित करा सकेंगे ।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंचार की भूमिका और अवसरों से परिचित हो सकेंगे ।
- गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं के विभिन्न प्रश्नों की जानकारी दे सकेंगे ।
- ग्रामीण-पर्यावरण के विविध पक्षों को उजागर कर सकेंगे ।

इस इकाई का उद्देश्य ग्रामीण जनसंचार की स्थिति, ग्रामीण जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानना, उनकी समस्याओं को समझना और विविध प्रकार की ग्रामीण

विकास योजनाओं की विस्तृत चर्चा करना है । ग्रामीण-परिवेश के जनसंचार माध्यमों के बारे में आप जानकारी दे सकें, इस बात का प्रयत्न प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

इकाई के अध्ययन के बाद आप यह भी बता सकेंगे कि केंद्र सरकार राज्य सरकारों और गैर सरकारी एजेंसियों ने किस प्रकार विभिन्न योजनाएं लागू करके ग्रामीण विकास की दिशा में क्या प्रयत्न किए हैं? आप यह भी पहचान सकेंगे कि पंचायतों तथा जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों को हाल ही में किन- किन क्षेत्रों में अधिक शक्तियां प्रदान की गई है, जिसका विकास अभिकरण या विकास कार्यों में लगी इन एजेंसियों का मुख्य ध्येय ग्रामीण-गरीबी को दूर करने में योग देना है।

ग्रामीण जनसंचारकर्त्ताओं और ग्रामीण- पत्रकारिता में सलग्न लोगों का प्रमुख कार्य ग्रामीणों से संबद्ध विभिन्न मुद्दों के बारे में सूचनाएं एकत्रित करना है । ग्रामीण विकास को समर्पित 'योजना', 'कुरुक्षेत्र' आदि सरकारी पत्रिकाएं इस प्रकार जनसंचार कार्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण जानकारी प्राह करने में सहयोगी हो सकती है ।

1.1 प्रस्तावना

ग्रामीण- पर्यावरण सूचना संप्रेषण के संदर्भ में दो प्रकार के सवाल उठाए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार के ग्रामीण- पर्यावरण में विविध तरह के सूचना माध्यमों की भूमिका क्या है? जनसंचार का ढांचा या प्रारूप किस- किस प्रकार का है और ग्रामीण परिवेश में उसका विस्तार कितना है? अंतर व्यक्ति स्तर (इंटर-पर्सनल लेवल) पर विविध प्रकार की सूचनाओं के संचार की जानकारी सामाजिक ढांचे या 'नेटवर्क' से प्राप्त की जा सकती है । ग्रामीण- क्षेत्रों में सेवाएं देने वाली संस्थाओं का संचार- कार्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य हो सकता है । गरीब- ग्रामीण-जनों के बीच आमतौर से जो जनसंचार माध्यम दिखाई देता है वह है रेडियो ।

ग्रामीण- विकास के मार्ग में एक बड़ी बाधा है ग्रामीण- क्षेत्र के विकास के लिए क्रियान्वित की जाने वाली योजनाओं में उनकी भागीदारी का अभाव । भागीदारी को विभिन्न स्तरों और अर्थों के रूप में लिया जा सकता है और मापा जा सकता है । लेकिन अहम प्रश्न यह है कि लक्षित लोगों में से ग्रामीण परियोजनाओं में कौन और कितने लोग इनमें भागीदारी की रुचि रखते हैं? हर जगह सूचना या शिक्षा की मुक्त उपलब्धि है परन्तु इनका लाभ कुछेक ही उठा पाते हैं । इसके परिणामस्वरूप ज्ञान की खाई चौड़ी होती जा रही है और विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच फासला बढ़ता जा रहा है ।

ग्रामीण संचार के अनेक उलझनों भरे आयाम है परंतु इस इकाई में साधारण निरीक्षण तक सीमित रहते हुए लेखन, संपादन एवं दृश्य आदि के संदर्भों में ग्रामीण संचार को सवाल बनाने वाले पक्षों का स्पर्श किए बिना विभिन्न बिंदुओं पर व्यापक चर्चा की गई है ।

1.2 ग्रामीण जनसंचार एवं इसके विविध आयाम

ग्रामीण संचार की चर्चा करने से पूर्व ' ग्रामीण' एवं ' संचार' इन दो शब्दों के अर्थ स्पष्ट करना उचित होगा । दरअसल मानवीय संचार या संप्रेषण न तो ग्रामीण होता है और न ही नगरीय । जब संप्रेषण या संचार. की प्रक्रिया ग्रामीण इलाकों में होती है तो उसे ग्रामीण

संचार की संज्ञा दे दी जाती है और नगरों में संचार की क्रिया को नगरीय संचार कह देते हैं । लेकिन देखने में यह आता है कि विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त संचार के साथ इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग कर लिया जाता है जैसे आदिवासी क्षेत्रों में की जाने वाली संचार प्रक्रिया को 'आदिवासी संचार' कहते हैं ।

इस प्रकार क्षेत्र, भौगोलिक स्थानों एवं संचार में संलग्न लोगों के अनुरूप संचार को एक पहचान दे दी जाती है । इसे उदाहरण सहित इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं । हर मनुष्य की बहुआयामी (मल्टीपल) पहचान होती है । जैसे कि एक ग्रामीण, एक किसान होता है । अत: किसान के रूप में उसकी पहचान होती है । उसका परिवार होता है जिसमें पत्नी और बच्चे होते हैं । अत: पति एवं पिता के रूप मे पहचान होती है। वह स्थानीय पंचायत का सदस्य भी हो सकता है और ऐसा होने पर उसकी पंचयात सदस्य के रूप मे भी पहचान होगी । इस किसान को अपनी विभिन्न प्रकार की पहचान के अनुसार अलग- अलग भूमिकाएं निभानी होगी और इस प्रकार उसे अपनी अलग- अलग भूमिकाओं के अनुरूप विविध- स्तरों पर संचार या संप्रेषण करना होगा। ग्रामीण- संचार की भूमिका, इस प्रकार ग्रामीण- समाज के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक ढांचे की परख करना और ग्रामीण- समस्याओं को जानना है । खेती, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि के क्षेत्र में इस प्रकार लक्षित- समूह की समस्याओं को खोज कर उसकी सहभागिता से उनका समाधान प्राप्त करना है।

इन समस्याओं को प्रभाव एव निम्नांकित क्षेत्रों में प्रभावोत्पादक के संदर्भ में ग्रामीणों से संबध के संदर्भ में मापा जाता है -

- ❖ समानता या इक्यूटी : सूचना से किसे लाभ है?
- ❖ उत्पादकता : कृषि- उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है ।
- ❖ ज्ञान : साक्षरता एवं राजनैतिक। जागृति ।
- ❖ प्रवृत्ति (एटीट्यूड्) : स्वास्थ्य की देखभाल एवं पोषण प्रणालियों को ग्रहण करना
- ❖ व्यवहार : दीर्घकालीन चलने वाले विकास के अभ्यास या प्रेक्टिसेज ।

ज्ञान की एक शाखा या 'डिसीप्लिन' के रूप में ग्रामीण संचार का कार्य ग्रामीणों के वास्तविक चरित्र या विशेषताओं, उनके संचार व्यवहार तथा इनके परिणामों की तलाश करना है। यह निर्विवाद रूप से सही है कि भारत में ग्रामीण संचार की एक अहम भूमिका है लेकिन इसे ग्रामीण गरीबी को समझना अनिवार्य है।

कल्याणकारी राज्य

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को संविधान के प्राक्कथन तथा राज्य नीति के निर्देशन सिद्धांतों में प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति दी गई है । इससे यह स्पष्ट है कि राज्य का यह परम दायित्व है कि वह गरीबों के उत्थान एवं कल्याण की दिशा में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करे । साथ ही गरीबी की रेखा वाले तथा उपेक्षित उन सामाजिक समूहों के विकास में महती भूमिका निभाए जिनका जीवन सदैव परिश्रम, पसीनों और आसुओ की गर्दिश में गुजरा है।

एक के बाद एक तैयार की गई पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक कार्यक्रम बनाकर गांवों में रहने वाले लोगों की आर्थिक स्थिति एवं दशा को उन्नत

करना ही इन कार्यक्रमों का लक्ष्य रखा गया है। कमजोर वर्गों के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान को दृष्टि में रखते हुए ही अनेक कार्यक्रम बनाए गए तथा सरकार द्वारा इन वर्गों का जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए केंद्रित किए गए।

भारत में एंथ्रोपोलजिकल सर्वेक्षण किया गया । भारत के लोगों के बारे में डी. कवर सुरेशसिह जो एंथ्रोपोलजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के डायरेक्टर जनरल थे, के नेतृत्व में पहली बार ऐसा प्रयास किया गया । सर्वे को 'भारत के लोग' नाम दिया गया ।

इस सर्वेक्षण ने रोचक सूचनाओं, तथ्यों, मान्यताओं आदि को एकत्रित किया जैसे 'चौहान' नाम जो कि153 समुदायों मे प्रयुक्त किया जाता है, मामा की लइकी से विवाह प्रथा का 2368 समुदायों मे प्रचलन और 20 प्रतिशत समुदायों का ही शाकाहारी होना। डॉ के. एस. सिंह के शब्दो मे " मै बार बार इस बात पर जोर देता हूँ कि परियोजना से यह स्पष्ट है कि एकीकरण की प्रक्रिया कतई खत्म नहीं हुयी है। मै यह नही कह रहा हूँ कि कही कोई, झगडे या हिंसा नही है, लेकिन साथ ही साथ समुदायों मे एकता की प्रक्रिया जारी है। "आगे उन्होने कहा है कि 44 प्रतिशत समुदाय बाजार या साप्ताहिक हाटों के माध्यम से बाज़ार की शक्तियाँ सीधे जुड़े हुए हैं। ये एकीकरण के प्रतीकों जैसे राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान से परिचित है।

सर्वेक्षण में यह भी इंगित किया गया है कि विभिन्न समुदायों में विवाह संपन्न करने का तरीका आपस की बातचीत एवं स्वीकृति से होता है । कहीं- कहीं इस संबंध में जबरन या खरीद के द्वारा भी यह कार्य होता है । अधिकांश भारतीय समुदायों में बहु- विवाह की प्रथा नहीं है परंतु 839 समुदाय में एक ही पत्नी के होने की परंपरा के साथ बहु- विवाह की भी कई संप्रदायों में प्रथा है। विवाह के संबंध में सामाजिक परिवर्तन भी हुए हैं और विवाह योग्य आयु का बढ़ना, दहेज के खिलाफ वातावरण, पति या पत्नि को कानूनी तलाक के हक के नियम एवं पुनर्विवाह आदि के नियमों में बदलाव आया है । रता, आपसी सामंजस्य का अभाव आदि कई कारणों से 3794 संप्रदायों में तलाक दिए जाने की छूट है।

बदलते सामाजिक मूल्य

इस आम धारणा को झुठलाते हुए कि भारतीय समाज परिवर्तन के खिलाफ है, एम. एन. श्री निवास के अनुसार भारतीय समाज निरंतर गतिशील है तथा इसमें समय के साथ परिवर्तन होते आए हैं। जहां विभिन्न समूहों के अपने- अपने मूल्य होते हैं । स्थानीय स्तर पर बहु- संख्यक जाति का वर्चस्व रहता है । हमेशा हिन्दू जैन, सिक्ख, ईसाई आदि का देश के विभिन्न भागों में अपना- अपना स्थान रहा है और जिस क्षेत्र में जो समुदाय ज्यादा संख्या में रहा, उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है।

आजादी के बाद संविधान में न केवल भारतीय अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति और समाज में मूलभूत परिवर्तन करने की ही व्यवस्था की गई बल्कि इस परिवर्तन की उपलब्धि के साधन अपनाने के प्रावधान भी किए गए। वयस्क मताधिकार एक ऐसा आधारभूत साधन काम में लिया गया है, जिसने भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तनों को दिशा दी है। अस्पर्श्यता और किसी भी रूप में इसका व्यवहार करने को आपराधिक कृत्य घोषित किया गया। विधायिकाओं अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई।

अनुसूचित जाति

देश में 13.82 करोड़ अनुसूचित जातियों के लोग हैं । यह देश की कुल जनसंख्या का 16.40% है। इनमें अनुसूचित जाति के 50% लोग उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडू और आध्रप्रदेश में रहते हैं । राजस्थान की 17. 29 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जातियों की है।

अनुसूचित जाति या समुदाय पीड़ित रहा क्योंकि इसे निम्न आर्थिक स्तर, कमजोर संपति आधार, दैनिक मजदूरी पर निर्भरता, छोटी जोत, अस्वच्छ उद्यम आदि के कारण गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करना पड़ा। ऐसी स्थिति में विभिन्न सूचना माध्यमों का यह दायित्व बनता है कि वे उनकी स्थिति, आवश्यकताओं, समस्याओं पर ध्यान दे तथा परिवार या व्यक्तिगत स्तर पर जो उनके हित के लिए कार्यक्रमों का सीधा प्रवाह है, उस पर नियंत्रण की नजर रखे । अधिकांश उद्यमी- समूह जैसे कृषि मजदूर, खेतीहर श्रमिक, प्रारंभिक स्तर के चर्म-श्रमिक, ग्रामीण कारीगर, मछुआरे, सफाई कर्मी आदि की स्थितियों का आकलन करने दिशा में भी विभिन्न माध्यमों की भूमिका है ।

अनुसूचित- जनजाति

भारत सरकार की निरंतर यह व्यूह रचना है कि सुनियोजित विकास योजना के द्वारा आय मे, असमानता की खाई को कम किया जाए। 'स्तर सुधार एवम अवसरों की उपलब्धता के सन्दर्भ मे असमानता को कम किया जाए। ऐसा करने ले लिए सरकार का यह प्रयत्न है कि उपलब्ध स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग कमजोर और पिछड़े लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान में किया जाए और विशेष रूप से इस बारे में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के उत्थान की ओर ध्यान केंद्रित किया जाए। हमारे देश में लगभग 8.8 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के लोग है। इनके लिए विशेष आदिवासी या जनजातीय विकास योजनाएं प्रारम्भ की गई हैं । जनजातीय उपयोजना व्यूह रचना पांचवी पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से क्रियान्वयन में है। इसके दो उद्देश्य है। जनजातियों के समाज के अन्य वर्गों के बराबर लाना तथा निहित स्वार्थ से प्रेरित समूहों के शोषण से इनकी सुरक्षा करना। आदिवासी या जनजातीय उप-योजना व्यूह रचना राजस्थान सहित देश के 18 प्रदेशों में संचालित है'। जनजाति के लड़कों तथा लड़कियों के लिए होस्टल बनाए गए। शैक्षणिक परिसर एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा की जनजातीय क्षेत्रों में उपलब्धता के प्रयास किए गए हैं ।

संवैधानिक प्रावधान

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को विभिन्न प्रकार से संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करने के साथ- साथ सार्वजनिक रोजगार के अवसर प्रदान करने के प्रावधान भारतीय संविधान में उपलब्ध कराए गए हैं । इनका लक्ष्य इन समुदायों द्वारा भेदभाव की पीड़ा सहन किए जाने के संदर्भ में अन्य वर्गों की बराबरी में इन्हें लाना तथा रोजगार प्रदान करना है । संविधान की धारा 16 एव 35 में विशेष प्रावधान किया गया है ताकि सेवाओं में इनका उचित प्रतिनिधित्व रहे ।

अन्य पिछडा वर्ग

धारा 340 में अन्य पिछड़ा वर्ग की पहचान के लिए प्रावधान किया गया है, जो कि मण्डल कमीशन पर आधारित है । मंडल मामले में इंदिरा साहनी एव अन्य तथा भारत सरकार

के सम्बन्ध में 16 नवम्बर, 1992 को उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में अन्य पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण सरकारी सेवाओं में रखने को बरकरार रखा है । 'क्रीमी लेयर' के नाम से उनमें सामाजिक दृष्टि से संपन्न लोगों को उसमें शामिल नहीं किया गया' भारत सरकार के कार्मिक एव प्रशिक्षण विभाग के 8 सितम्बर, 1993 को जारी आदेश के अनुसार पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण के नियम में उन लोगों के पुत्रों एव पुत्रियों को इस सुविधा में सम्मिलित नहीं किया गया है-

– जो लोग, भारत के राष्ट्रपति, न्यायाधीश, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष, चुनाव आयोग, प्रथम श्रेणी अधिकारियों, कर्नल या इसे ऊपर के पद पर सेना, जल सेना या वायुसेना में लोग कार्यरत हैं।

– जिन परिवारों के पास राज्य कानूनों के अनुसार 859० से अधिक सिंचित भूमि सीमित सीमा से अधिक है ।

– जिनकी सालाना आमदनी एक लाख रु. या इससे अधिक है ।

भर्ती का तरीका	अ.सु.जाति	अनु.जन.जाति	अन्य पिछड़ा वर्ग
- अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतिस्पर्धा की परीक्षा	15%	7.5%	27%
- खुली प्रतियोगिता लेकिन	$16\frac{2}{3}\%$	7.5%	25.83%
"समूह 'सी' और 'डी' के पर जहाँ साधारण उम्मीदवारों को स्थानीय स्तर या क्षेत्र क्षेत्र से बुलाया जाता है।	अनु. जाति, जनजातियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग की राज्य में जनसंख्या के अनुपात में, "यूनियन हेरीटर्रा में लेकिन 50% की सीमा।		

अल्पसंख्यक

संविधान की धारा 25, 26, 29, 30 के अनुसार भारत सरकार मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई, जोरास्ट्रियन जैसे अल्पसंख्यक समुदायों को कुछ अधिकारों एवं सुविधाओं को मान्यता दी हैं । सन् 1991 की जनगणना के अनुसार अल्पसंख्यक समूहों की संख्या कुल जनसख्या का 17.17% है। अल्पसंख्यकों के लिए 15 बिंदुओं का कार्यक्रम बनाया गया है।

सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित क्षेत्रों में सांप्रदायिक सद्भाव एवं सामंजस्य में आकाशवाणी एवं दूरदर्शन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राष्ट्रीय चैनल से विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं जैसे "भगवान से पूछूं या खुदा से"। विश्व प्रसिद्ध हजरत ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की अजमेर स्थित दरगाह का प्रशासन केंद्र सरकार के अधिनियम 1955 के अंतर्गत होता है

विकलांग व्यक्ति

चार प्रकार की विकलांगता होती है-(।) दृश्य, (II) श्रव्य, (III) बोलने (IV) लोको मोटर और 16.15 मिलियन लोगों में इनमे से कोई न कोई प्रकार की विकलांगता है । भारत कीं कुल जनसंख्या का 2 प्रतिशत किसी न किसी प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त है । रेहाबिलीटेशन कौंसिल ऑफ इंडिया कानून दो अंतर्गत स्थापित एक संस्था है जिसे भारत सरकार के पुनर्वास

अधिनियम 1992 के अंतर्गत स्थापित किया गया है । यह संस्था विकलांगों के पुनर्वास के प्रति समर्पित है।

1.3 संचार की प्रकृति

संचार को समझने का अन्य एक और तरीका है । कम्यूनिकेशन या संचार का उद्देश्य क्या है? क्या इसका लक्ष्य सूचना देना है? क्या इसका कार्य शिक्षित करना या प्रेरित करना है? उद्देश्य के संदर्भ में संचार को अलग-अलग भागों में बाट सकते हैं । मोटे तौर पर उद्देश्य की दृष्टि से संचार को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

पहला - यदि संचार का लक्ष्य मात्र सूचना देना है तो इसे सूचनात्मक संचार कह सकते हैं । उदाहरण के लिए जैसे कि आज रेलगाड़ी 2 घंटे विलंब से आएगी या आज दुकानें बद रहेंगी

दूसरा - यदि संचार करने का उद्देश्य शैक्षणिक है तो शैक्षणिक संचार की संज्ञा दी जाएगी । जैसे कि कक्षा में पढ़ाना था-मलेरिया के संबंध में क्या करें तथा क्या न करें, आदि की घोषणा ।

तीसरा - मनोरंजनात्मक संचार है जिसका लक्ष्य लोगों का मनोरंजन करना है । कवि-सम्मेलन या संगीत-प्रस्तुति इसके उदाहरण है ।

इन तीनों ही प्रकार के संचार में 'डिग्री' का अंतर है । एक मनोरंजनात्मक पुट हो सकता है लेकिन ज्यादा प्रभाव की दृष्टि से मनोरंजन ही प्रमुख है । अत: इस प्रकार के संचार को मनोरंजनात्मक संचार कहेंगे ।

1.4 संचार के स्तर

संचार जो विभिन्न स्तरों पर भी बाँट सकते है।

प्रथम - अन्त:व्यक्ति (ईंटर पर्सनल) संचार है जिसके अंतर्गत व्यक्ति स्वयं अपने से बात करता है। सोच- प्रक्रिया, एक प्रकार से व्यक्ति की अंत:प्रक्रिया क्या स्वयं से ही संवाद का तरीका है।

द्वितीय - व्यक्ति से व्यक्ति के बीच संचार को मौखिक संचार भी कहते हैं जिसके अंतर्गत व्यक्ति किसी व्यक्ति या समूह से व्यक्तिश: वार्ता करता है या संचार करता है । यह अनौपचारिक संचार ग्रामीण क्षेत्रों मे प्रचलन में है ।

तृतीय - समूह संचार : इसमें एक समूह अपने बीच आपस में संवाद करता है । ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित ' चौपाल' इसका उदाहरण है जहां गांव के बड़े-बूढ़े खाली समय स्थानीय समस्याओं या व्यक्तिगत समस्यों पर चर्चा करते हैं ।

चतुर्थ - जनसंचार जो इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर सूचनाएं प्राप्त करने या प्राप्त करने की दिशा में निर्भर है । ग्रामीण- क्षेत्रों में उपलब्ध हैं । ये स्तर, संचार में सम्मिलित लोगों की संख्या पर आधारित है ।

1.5 लोक परंपराएं

भारत अपनी लोक परंपरा में समृद्ध है । लोक-गायन का आधार परंपरा है । गायन की परंपरा लोक जीवन में मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर चली आई है । विकसित समाजों में इस परपरा में बदलाव एवं सृजन की गुंजाइश रही है । लोक गायन वास्तव में लोगों का अपना संगीत या अपनी लोक- परंपरा है और इस कारण स्वाभाविक रूप से वह लोकप्रिय है ।

लोक परंपराएं, भारतीय मौखिक परंपरा का हिस्सा है । इस परंपरा में उनकी उमंगें, संवेदनाएं, भावनाएं और विचार ढलते चले आए हैं । विवाह, उत्सव, त्यौहार आदि के अवसर पर उनकी संवेदनाएं और विचार, मान्यताएं या अच्छे और बुरे के बीच का अतर, मुखर हो उठता है । ये परंपराएं मौखिक रूप से निरंतर प्रसारित होती आई है ।

इन परंपराओं में लोककथाएं जैसे लोकनृत्य, लोक क्रापट्स, लोक- चित्रण एवं शिल्प या मूर्तिकला आदि की तकनीक और ज्ञान अभ्यास के द्वारा प्रसारित होते है । वास्तव में, मौलिक, लिखित, दृश्य आदि क्षेत्रों में प्रशिक्षण के द्वारा सीखने की प्रक्रिया है । इन सब लोक संस्कृति के तत्वों का प्रभाव संयुक्त रूप से सृजन या प्रसारण पर पड़ता है ।

लोक संस्कृति का आमतौर से यह अर्थ लगाया जाता है कि साधारण या असाक्षर या गैर साहित्यिक लोग जैसे ' ग्रामीण किसान, मजदूर, आदिवासी और पिछड़े लोगों की संस्कृति । लेकिन, दरअसल में लोक परंपरा को मानवीय सभ्यता की सर्जनक्षमता या मानवीय- सभ्यता का सृजन समझना चाहिए । यह उन लोगों की संस्कृति या सृजन का परिणाम है । जो भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं, एक ही भाषा में संवाद करते हैं, एक संस्कृति, एक ही प्रकार के जीवनयापन के स्रोत, एक ही प्रकार की विरासत आदि के कारण एक परस्पर की समान पहचान रखते हैं । भारतीय संस्कृति की समृद्धि मे इन विभिन्न प्रकार की लोक संस्कृतियों का योग है।

लोकगीत और नृत्य को कला माना जाता है । ये कलाएं विविध प्रकार की हैं । जब लोक परपरा के संचालन का उपलब्धियों पर दृष्टि डाली जाती है तो इसकी तीन विशेषताएं प्रमुख रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं -ज्ञान का समावेश, विचार का प्रकार और उसका कलात्मक पक्ष । ये तीनों तत्व ही लोक संस्कृति का ताना-बाना बुनते हैं। समाज में परिवर्तन के साथ उसकी संस्कृति भी बदलती है। संस्कृति का बदलाव लोक परंपराओं मे परिवर्तन उत्पन्न करता है।

ग्रामीण माध्यमों के चैनल

समाचारपत्र	विडियो वाहन
पोस्टर	हाट/बाजार
बेनर	मेला
भित्तिचित्र	ग्रामीण दुकानें
क्राफ्ट	बस्ते
बस पेनल्स	ताश
ग्रामीण बस	अड्डा-ग्रामीण कलेंडर (पंचांग)

ट्रेक्टर ट्राली	कॉपियो के कवर लोक मंच रेडियो
नौटंकी	टी. वी.
भजन मंडली	सिनेमा हॉल
कठपुतली प्रदर्शन	

1.6 गांव को समझना

गांव की धारणा स्थान के बंधन से जुड़ी हुई है । लोग पास-पास रहते ही नहीं बल्कि एक इकाई के रूप में बंधे रहते हैं । एक दूसरे के नजदीक होते हैं । एक दूसरे को करीब से जानते हैं और यह भी जानते हैं कि कौन ग्रामीण-जीवन में बेहतर योगदान करने की क्षमता रखता है । यह आत्मीय या करीबी संबंधों से पैदा हुआ । एक दूसरे के बारे में ज्ञान ही ग्रामीण जीवन की एक अनूठी विशेषता है।

हमारा देश नगरीय एवं ग्रामीण इन दो भागों में विभाजित है । जनसंख्या के लिहाज से 70 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में वास करते हैं । दूसरी विशेषता यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों का मूल उद्योग या व्यवसाय खेती है । यह भी कहा जा सकता है कि कृषि ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मूल व्यवसाय है तथा ग्रामीण- समाज के बाकी सारे कार्य इसी खेती पर निर्भर हैं। खेती के क्षेत्र में मंदी या विपदा से संपूर्ण देश प्रभावित होता है तथा उसमें मंदी या विपद व्याप्त हो जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों की अन्य विशेषताएं इस प्रकार हैं -

प्रथम - स्थानीयता की विशेषता है । लोग पीढ़ियों से ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं । वे ग्रामीण समाज का अभिन्न अंग हैं । कृषि, बागवानी, पशुपालन, वनस्पति से संबंधित का दो, मछलीपालन आदि विभिन्न कार्यों को करते हैं एवं इन आदिवासियों में उनकी भागीदारी रहती है । वे गांव के मेलों, फसल पकने पर मनाए जाने वाले त्यौहारों, स्थानीय विवाहों एवं अन्य विशेष सामाजिक एवं धार्मिक रीति- रिवाजों में मिलकर भाग लेते हैं ।

द्वितीय - गांवों में वर्ग विभेद भी बिल्कुल स्पष्ट है । धनवान और साधारण ग्रामीण एक दूसरे से भिन्न हैं । धनवानों का वर्चस्व एवं अधिकार आज भी गरीब ग्रामीणों पर है । वर्ग के अपने - अपने स्तर है ।

गांवों में जाति प्रथा की जड़ें आज भी गहरी हैं । गुरु ग्रंथ साहब के अनुसार हिंदुओं के मत से चार जातियां है लेकिन उनका बीज एक है, मूल एक है । यह माटी के बर्तनों की तरह है जहां मिट्टी एक है लेकिन, माटी के बर्तनों के रूप अनेक है । माटी में कोई भिन्नता नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यों के शरीर उन्हीं पंचभूतों या पांच तत्वों से बने हैं । फिर उनमें कोई छोटा और कोई बड़ा किस प्रकार हो सकता है?

तृतीय - गांवों की यह एक अति महत्वपूर्ण विशेषता है कि वहां लोग प्रकृति के अति निकट हैं । प्रकृति से सामंजस्य ही प्राथमिक कानून है । नगरीय जीवन में यह बात नहीं । इसका एक बड़ा कारण यह है. कि ग्रामीण जीवन की दिनचर्या और अस्तित्व का सीधा- आधार

प्रकृति है। अत: ग्रामीण जीवन का निकटतम संबंध भूमि, वन, नदीं, पर्वत आदि विभिन्न प्राकृतिक चीजों से है । उनका प्रकृति से एक अटूट रिश्ता है ।

चतुर्थ - ग्रामीण जीवन में सामाजिक सीमाएं हैं । कुछ पिछड़ी अनुसूचित जाति या जनजाति के वर्गों को ग्रामीण व्यवस्था में कम महत्व मिलता है । ये सामाजिक विभेद, साधारणतया पीढ़ी- दर-पीढ़ी चले आ रहे हैं ।

पंचम - कृषि पर आधारित ग्रामीण व्यवस्था अपने आप में एक इकाई की तरह है और हर व्यवसाय एक दूसरे का पूरक है । व्यवसायगत जरूरतों को पूर्ण करने के लिए लुहार, कार्पेंटर, स्वर्णकार, सफाईकर्मी, कुम्हार आदि व्यवसाय एक दूसरे की जरूरतों को पूर्ण करते हैं ।

षष्ठ - स्त्री- पुरुष के बीच असमानता ज्यादा है । महिलाएं न केवल घर का कार्य करती हैं, बल्कि पशुपालन, खेती आदि कार्यों में भी कठोर श्रम करती हैं । परंतु उनका सामाजिक स्तर उनके योगदान की तुलना में कम है।

पुरुष प्रधान ग्रामीण व्यवस्था में संविधान के 73वें संशोधन के माध्यम से एक नया अध्याय शुरू हुआ है और महिलाएं घर की चार दीवारी से मुक्त होकर ग्रामीण जीवन की मूलधारा से जुड़ गई हैं । अत: उनके लिए पंचायतों में प्रमुख स्थान है । लेकिन अभी भी ग्रामीण महिलाओं के उत्थान की प्रक्रिया लंबी है और इसके लिए निरंतर प्रयत्नों की आवश्यकता है।

सप्तम् - गांवों को समझने के लिए यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि असाक्षरता की बीमारी से ग्रामीण क्षेत्र व्यापक रूप से प्रभावित है । पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक संख्या में असाक्षर है ।

अष्टम - नगरों में रहने वालों की तुलना में ग्रामीणजन अंध विश्वासों से अधिक ग्रस्त है। इस कमजोरी का कुछ लोग फायदा उठाकर ग्रामीणों का शोषण करते हैं । आए दिन कोई न कोई घटना इस बात का संकेत दे देती है । बीमारी, लाचारी और आर्थिक विपन्नता के साथ असाक्षरता और भोलापन, अनेक घटनाओं एवं संदर्भों मे चतुर चालाक और अफंडी लोगों द्वारा ठगा जाता है । अंधविश्वास एक प्रकार का असाध्य रोग है जो शिक्षा के उजाले के घने होने पर ही मिटेगा ।

नवम - अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक स्वास्थ्य एव चिकित्सा सेवाओं की कमी के कारण आज भी ग्रामीण जन परमपरागत ढर्रे पर चली आ रही धारणाओं एव परंपरागत चिकित्सकों पर निर्भर है । जादू- टोने करने वाले या बिना पूर्ण ज्ञान के ही चिकित्सक का धधा करने वाले लोगों के चंगुल में अधिकांश ग्रामीण फंसे हुए हैं । बीमारी की अवस्था में देशी नुस्खों का तब तक लोग इस्तेमाल करते हैं जब तक कि बीमारी बढ़ न जाए। बीमारी अधिक बढ़ने पर विवश होकर कहीं अस्पताल की तलाश करते हैं । राजस्थान सरकार ' स्वास्थ्य देखभाल कार्ड' जारी करने पर विचार कर रही है ताकि इस व्यवस्था से गरीबी से नीचे जीवन यापन करने वालों को चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सके ।

दशम - आजादी का अर्द्ध शतक पूर्ण होने के बाद भी अस्पर्श्यता, जातिगत 'भेदभाव जैसी बुराइयां पूरी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में कम नहीं हुई हैं । इनकी जड़ें कमजोर अवश्य हुई हैं । मंदिर में अछूतों के प्रवेश, चाय की दुकानों में एक ही प्याले में चाय आदि के संदर्भ में आज भी विभेद की प्रथा का चलन है।

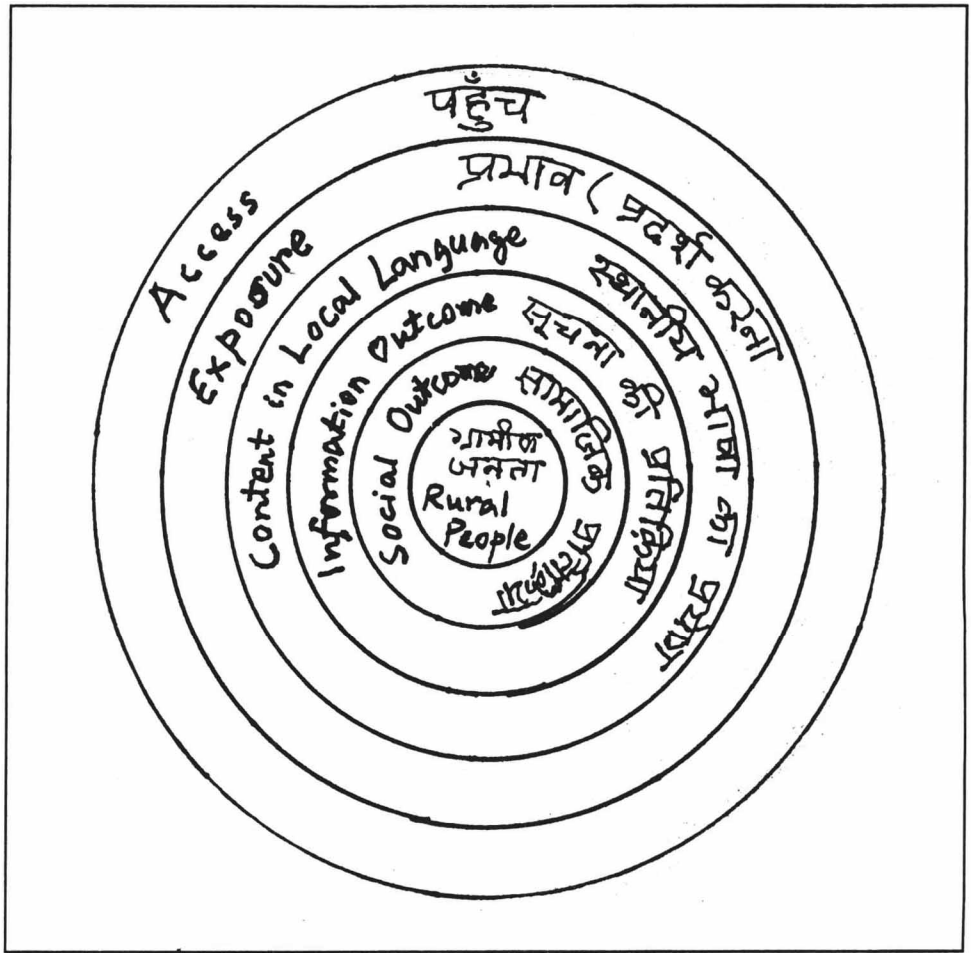

1.7 ग्रामीण संचार का विकास चक्र

ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंचार की भूमिका को समझने के लिए हमें ग्रामीण समाज के सभी सामान्य सामाजिक संरचनाओं एवं स्वरूपों को समझना होगा। इस कार्य में सभी पांचों चरण को समझना आवश्यक है परंतु जरूरी नहीं कि सभी चरण ऊपर दिखाए गए चक्र की तरह ही हों । यह इस कारण होता है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिपुष्टि (फील्डबैक) प्राप्त करना कठिन होता है। साथ ही वह सामग्री जो हम इस्तेमाल करते हैं अक्सर उसकी विश्वसनीयता प्राप्त करना कठिन होता है ।

1.8 सरकारी सूचना माध्यमों का योगदान

ग्रामीण क्षेत्रों में देश की तीन- चौथाई जनसंख्या रहती है जो गरीब है, जिसकी आय सृजन की क्षमता कम है और जिसके पास पर्याप्त बुनियादी न्यूनतम सेवाओं का अभाव है तथा यह उनके जीवनयापन को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं है । ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना और उनमें रह रहे लोगों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में सुधार लाना आरंभ से ही विकास आयोजना का मुख्य ध्येय रहा है।

मूल उद्देश्य समुदाय को अधिकार संपन्न बनाकर विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को बढ़ाना है । ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना, बेघर गरीब परिवारों को आवास सहायता प्रदान करना, सडकों का निर्माण करना, मरुभूमि विकास कार्यक्रम, गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण रोजगार और विकास, ट्यूबवेल के लिए सहायता प्रदान करना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा शारीरिक रूप से विकलांग लोगों को सहायता देना आदि कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना केंद्र तथा राज्य सरकारों का दायित्व है तथा इन योजनाओं की प्रगति की समीक्षा करना।

इन विषयों के बारे में लिखने के लिए बहुत अधिक है। इसमें शक नहीं कि हिंदी पत्रकारिता का आर्थिक पक्ष उसके सामाजिक तथा राजनीतिक पक्ष से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। यह प्रवृत्ति हिंदी पत्रों तक ही सीमित नहीं है।

आज सबसे पहला स्थान इस बात को दिया जाता है कि पत्र का स्वरूप सुंदर हो, फिर यह कि वह अधिक से अधिक लोगों में बिके । आज छपाई की बडी-बड़ी और अच्छी मशीनें उपलब्ध हैं । हिंदी में सबसे पहले मध्य प्रदेश के इंदौर की 'नई दुनिया' ने फोटो कंपोजिंग और वैब ऑफसेट मशीन लगाई थी । राजस्थान में यह प्रक्रिया 'राजस्थान पत्रिका' से शुरू हुई ।

भारत सरकार के क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय की प्रचार इकाइयों ने देश के दूर- दराज के गांवों मे अंतर-वैयक्तिक संचार माध्यम के द्वारा विकास योजना की जानकारी देने तथा गांवों के लोगों की इनसे संबंधित प्रतिक्रियाएं सरकार तक पहुंचाने के कार्य में प्रमुख भूमिका निभाई है । सामूहिक चर्चाओं, फिल्म प्रदर्शन, सार्वजनिक सभाओं, प्रदर्शनियों, सेमीनार, संगोष्ठियों और गीत, नाटक जैसे मनोरंजक कार्यक्रमों आदि के जरिए निदेशालय लोगों तक अपने संदेश में सहभागी बनने के लिए उन्हें प्रेरित करता है।

विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख मेलों और समारोहों में भीड़ वाले स्थानों पर प्रचार अभियान चलाए जाते हैं।

इसी प्रकार भारत सरकार के विज्ञापन एवं दृश्य निदेशालय द्वारा देशभर में कई प्रदर्शनियां, विज्ञापन, बाह्य प्रचार आयोजित किए जाते हैं । सरकार की गतिविधियों, नीतियों और कार्यक्रमों की जानकारी पोस्टरों, फोल्डर, स्टिकरों, बिल्ले, होर्डिंग, बस पैनल, कियोस्क, बस टिकटों, दूरदर्शन और आकाशवाणी पर दृश्य और श्रव्य स्पॉट्स जारी किए गए । 'शांति, समृद्धि और सामाजिक न्याय' की पुस्तिका कई भाषाओं में वितरित की जाती है।

इसी प्रकार गीत और नाटक प्रभाग द्वारा भी लोक तथा परंपराओं नाटक, लोकगाथा गीत, नृत्य, नृत्य, नाटिका, लोक तथा परंपरागत वाचन, कठपुतली और जादूगरी. के कौशल द्वारा राष्ट्रीय विषयों पर कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं ।

1.9 कृषि में सूचना की भूमिका

सूचनाओं का वृद्धिगत प्रतिशत जिनका उपयोग कृषक अपने निर्णय लेने हेतु करते हैं, वह सार्वजनिक शोध संस्थाओं से उपलब्ध होने के बजाय उन्हें भौतिक रूप में उत्पादन प्रक्रिया से मिलता है ।

खेत में उत्पादक प्रक्रिया के दौरान सूचनाएं उपलब्ध कराने की धारणा विकसित हुई है। बीज या खाद का कितना और किस प्रकार उपयोग किया जाए तथा फसल की देखभाल, सिंचाई, कीट नाशक का उपयोग आदि विभिन्न कृषकों के हितों के लिए सूचनाएं उपलब्ध कराई जाती है।

ऐसे सूचनाओं का महत्व बढ़ा है -

1. जीवन एवं भूमि के लिए जल का विशेष महत्व है । हर साल 22 मार्च को विश्व जल दिवस मनाया जाता है । सयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णयानुसार इस प्रकार जल स्रोतों एवं जल की माता के बार- बार दोहराने के लिए ऐसा किया जाता है ।

विश्व जल दिवस को मनाए जाने के पीछे यह भावना है- स्थानीय, क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चेतना जागृत करना, जल के उचित उपयोग बह सरक्षण को स्थान मे रखना तथा जल-प्रबंधन के प्रति लोगो को सावधान करना।

जल के बिना जीवन की कामना नहीं की जा सकती है। इसके बिना जीवन का अस्तित्व असंभव है। संसार भर में प्रकृति की यह देन अनुपम है। देश में जल स्रोतों को सुनियोजित करने के लिए नेशनल कमीशन फॉर इंटीग्रेटेड वाटर रिसोर्सेज डवलपमेंट प्लान बनाया गया है जो राष्ट्रीय जलनीति तैयार करेगा।

भारत में कृषि की मानसून पर निर्भरता है। मानसून के समय पर आने या विलंब से आने का कृषि पर सीधा असर होता है। मानसून हवा के सहारे चलते बादलों पर किसान की नजर टिकी रहती है। मानसून का कमजोर रहना साधारण या सक्रिय होना या बहुत अधिक होना अर्थात् वर्षा का आधिक्य आदि का कृषि उत्पादन पर सर्वाधिक असर होता है ।

अत: किसानों के लिए मौसम संबंधी सूचनाओं की पूर्ति करना, तूफान की संभावना पर चेतावनी देना आदि के संदर्भ में आपद- सूचना प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका है । सेटेलाईट ने मौसम की भविष्यवाणी करने वालों को समुचित एवं सही सूचनाएं उपलब्ध कराने में सक्षम बना दिया है ।

2. वैश्वीकरण, व्यापार एवं आधारभूत कृषि उत्पादनों की मांग के कारण किसानों का ध्यान कृषि उत्पादन कुशलता एवं खाद्य उत्पादनों के भंडारण की ओर आकर्षित हुआ है ।

3. विभिन्न कृषि उत्पादों के मूल में वृद्धि और संरक्षण को ध्यान में रखते हुए उत्पादों के विकास, देखभाल आदि के बारे में जागृत रहना जरूरी है ।

4. बाजार संकेतों के अनुरूप कृषि उत्पादन का संयोजन करने के प्रति भी सावधानी रखना ताकि वह समय पर बाजार में पहुंच सके ।

5. सूचनाओं के लिए मांग का सृजन करना तथा सघन प्रबंधन करना ताकि बीज, उर्वरक, सिंचाई सुविधाएं, प्रमुख बैंको से वित्तीय सहयोग तथा बाजार में कृषि उत्पादों के विक्रय के अवसर मिल सके ।

नवीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित 4.3 प्रतिशत की विकास दर की वृद्धि से कृषि क्षेत्र की विकास दर की वृद्धि से कृषि क्षेत्र में विनियोजन बढ़ाना जरूरी है । कृषि ऋण प्रणाली में भी संस्थागत स्रोतों जैसे कामर्शियल बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं सहकारी ऋण ढांचा आदि की भूमिका उत्पादकता बढ़ाने तथा कृषि क्षेत्र की उत्पादकता की संभावनाओं का उपयोग करने की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

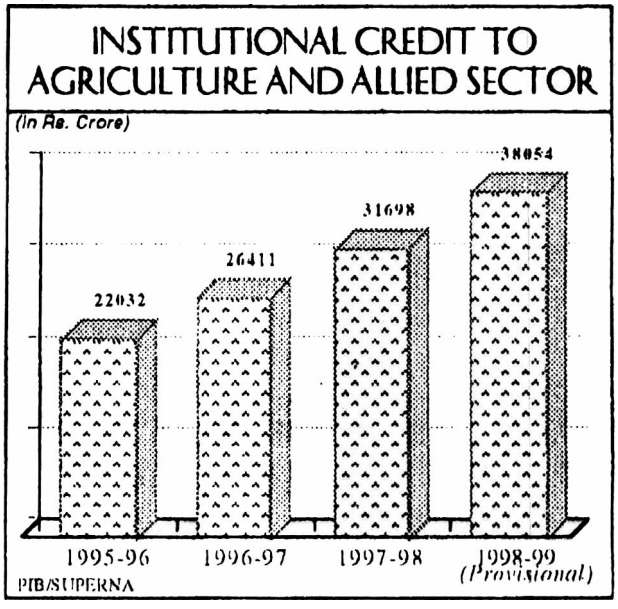

6. प्राकृतिक संसाधनों में स्वास्थ्य एवं सुरक्षा से संबद्ध दायित्व या जिम्मेदारी के एहसास ने किसानों को सूचना की सघनता एवं प्रबंधन की उत्पादन के हर स्तर पर जरूरत के प्रति कृषकों को प्रेरित किया है । अपने पर्यावरण के प्रति सम्मान और सजग रहना अब उत्पादन की गुणात्मकता बनाए रखने एवं पर्यावरण- संरक्षण के लिहाज से अत्यधिक आवश्यक हो गया।

7. कृषि के संदर्भ में विशिष्ट एवं निश्चयात्मक कृषि संबंधी सूचनाएं प्राप्त करने के बारे में अब छोटे-बड़े सभी किसानों की दिलचस्पी बढ़ रही है । बड़े किसान आधुनिकतम सूचनातंत्र एव उपकरणों के जरिए इस प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं ।

अब आर्थिक सफलता का आधार आपूर्तिकर्त्ताओं एवं खरीददारों के साथ प्रभावपूर्ण ढग से संचार करने की योग्यता बन गई है । अब संचार करने की इस योग्यता से ही बाजार के अवसरों का लाभ उठाया जा सकता है ।

1.10 पत्रकारों एवं जनसंचार कर्मियों की भूमिका

कोई पत्रकार जो ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण करेगा, उसे ऐसे लोग मिलेंगे जो जीवन के नकारात्मक पक्षों को विवरण दें। परिवारों का गरीबी से भरे जीवन के वृत्तांतों, ग्रामीण बेकारी या अर्द्ध- बेकारी तथा सरकारी सहायता का अभाव आदि बातों से उसका सामना होगा।

ग्रामीण समाज की ये कठिनाई यह आभास देगी की ग्रामीण समुदाय टूट रहे हैं। जैसे कि-

- अनेक लोग गांव छोड़ गए और काम की तलाश में शहरो की ओर कूच कर गए।
- गांव की पाठशालाओं में अध्यापक पढ़ाने नहीं आते और आते भी है तो वे बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते ।
- हमारे यहां चिकित्सा सेवा उपलब्ध नहीं है । हमें गांव के आस- पास ये सेवाएं चाहिए।
- गांव में उपलब्ध या आसपास मिलने वाले कार्यों से प्राप्त मजदूरी इतनी कम मिलती है कि परिवार का भरण-पोषण नहीं हो पाता।
- गांव में बैंक या डाकघर नहीं है।
- यहां पुलिस कीं व्यवस्था भी नहीं है । लोग एकांत अनुभव करते हैं । भविष्य के प्रति उनमें निराशा है । वे अपने आपको कमजोर और बेकार अनुभव करते हैं । इस प्रकार एक निराशाजनक ग्रामीण मनोवस्था से पाला पड़ेगा जहां वे इन स्थितियों के लिए अपने को दोषी नहीं मानते बल्कि सरकार पर इन स्थितियों के बने रहने का आरोप लगाते है।

इस प्रकार की स्थिति से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि ग्रामीण जन विभिन्न गरीबी उन्मूलन एव उन विकास योजनाओं के प्रति कतई जागरूक नहीं है जो सरकार ने 1952 से समग्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम, जिसमें कृषि, ग्रामीण उद्योगों, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, मनोरंजन तथा ग्रामीण जीवन के अन्य पक्ष शामिल है, की शुरुआत की थी।

1950 के दशक में सामुदायिक विकास कार्यक्रम

1960 के दशक में हरित क्रांति

1970 के दशक में समग्र ग्रामीण विकास

1980 के दशक में ढांचागत सामान्य बनाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को शामिल करना ।

1990 के दशक में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, लघु स्तर पर ऋण, रोजगार का सृजन।

पत्रकारों का ऐसे में यह दायित्व बनता है कि वे विकास के संदेश को प्रसारित करें तथा सफलता की कहानियों को माध्यमों के जरिए प्रस्तुत करें ।

एक अच्छे पत्रकार को चाहिए कि वह निम्नांकित बिंदुओं पर ध्यान दे -

- एक सत्य, समग्र एवं बुद्धिमतापूर्ण विवरण के साथ घटनाओं एवं प्रक्रियाओं की प्रस्तुति करे ।
- टिप्पणियों के आदान-प्रदान एवं आलोचना के लिए मंच उपलब्ध कराए ।
- जनमत को प्रस्तुत करे ।
- लोगों में वैज्ञानिक विचारों का प्रसार करे तथा सामाजिक बुराइयों की जड़ों पर प्रहार करने का प्रयास करे ।

- समाज की एकता की प्रक्रिया या समन्वयात्मक सूत्रों को प्रोत्साहित करे ।

उपरोक्त लक्ष्यों को तभी प्राप्त करना संभव है जबकि एक पत्रकार के रूप में हमारे भीतर ग्रामीण, गरीब, अज्ञान के अंधेरे से ग्रस्त एवं पिछड़े और पीड़ित जनों के प्रति भावनाए और संवेदनाएं हो । हमें यह अनुभूति हो कि वे मानवता के स्तर पर हमारे भाई और बहिनें हैं। एक बार इस प्रकार संवेदना या भाव हमारे हृदय में बैठ जाए तो उनके बारे में हमारा सोच स्वत: ही बढ़ेगा उनका ध्यान रखने की भावना बलवती होगी ।

हमें लोगों के लिए बनाई गई कल्याणकारी योजनाओं को सहयोग एवं बढ़ावा देना होगा। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में- " वास्तविक रूप में भारत गांवों मै बसता है । जब तक हम आदिवासियों एव पिछड़े वर्गो का उत्थान करने की दिशा में अपने को सामर्थ्यवान नहीं बनाएंगे, तब तक भारत का भविष्य अंधेरे में रहेगा । उनका आर्थिक स्तर ऊंचा करने के प्रयासों के साथ- साथ हमें उन्हें सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर भी ऊंचाई देनी होगी । अस्पर्श्यता को जड़मूल से नष्ट करना होगा । भारत की वर्तमान अवस्था को देखते हुए, यह हर भारतीय नागरीय का परम कर्त्तव्य है कि वह अभाग्यशाली, पिछड़े तथा आदिवासी समुदायों के उत्थान में समर्पण के साथ लगे और उनके कल्याण के कार्यों मे अपना योग दे ।

स्वामी विवेकानंद ने महिलाओं का आह्वान करते हुए कहा है- " महिलाएं अपने आपको संगठित करें । वे संगठित हों - अस्पर्श्यता के खिलाफ, दहेज प्रथा के विरुद्ध, सामाजिक असमानता दूर करने के लिए और निराश्रितों की समस्या-जैसी समस्याओं का निदान करने के लिए संसार के कल्याण की कोई संभावना नहीं है, यदि हम महिलाओं की दशा को बेहतर बनाने के लिए काम में सफल नहीं होते हैं । एक पंख से किसी भी पक्षी के उड़ने की कभी कल्पना नहीं की जा सकती।

स्वामी विवेकानन्द का युवकों के लिए भी जो संदेश है, वह ग्रामीण क्षेत्रों का समाचार देने वाले हर संवाददाता एव रिपोर्टर के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन है । उन्होंने कहा है, " मानवता के लिए अच्छा मार्ग करने के लिए गांव- गांव जाओ । संसार की भलाई का यह बड़ा काम है । दूसरों के लिए दासता खरीदना है तो बेहतर है स्वयं नर्क में जाओ । " इस प्रकार विवेकानन्द का संदेश ग्रामीण पत्रकारिता के संदर्भ में प्रेरक वाणी है ।

स्वास्थ्य- सेवाएं

मानव स्वास्थ्य से ग्रामीण समाज की दशा तय होती है तथा वस्तुस्थिति को परिलक्षित करती है । मानव स्वास्थ्य का क्षीण होने की रोकथाम करने और उसे बीमारी का शिकार होने से बचाने कैं लिए उसै मनुष्य जीवन को बचाने के लिए अवश्य ज्ञान उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

क्या इस संदर्भ में संदेश का ठीक संचार किया गया है? क्या ऐसा संदेश ठीक से उन्हे प्राप्त हुआ है,उसे ठीक से उन्होने समझा है और कार्य मे ढाला है? क्या कोई भी संदेश ठीक से विचारित, ठीक से अभिव्यक्त हुआ है तथा क्या संदेश की संरचना ग्रामीणजनों के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से इस प्रकार की गई है कि संदेश उन्हें स्वीकार्य हो? क्या ग्रामीणजनों को लक्षित इस प्रकार का संदेश अच्छी प्रकार से सूचित करने वाला है? क्या वह शिक्षित करता है?

क्या यह इतना प्रभावी एवं हृदय में उतरने या मन को झकझोरने की क्षमता लिए हुए हैं कि मनुष्य के व्यवहार को बदलने की प्रक्रिया में सफल हो सके? इस प्रकार कई प्रश्न हैं जो ग्रामीण संचार के संदर्भ में हमें अपने आप से पूछने होंगे तथा उनके उत्तर भी स्वयं खोजने होंगे ।

उदाहरण के लिए एक नगरीय स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता का ग्रामीण महिलाओं के समूह से बच्चों कौ मा का दूध ही पिलाने या 'ब्रेस्ट फीडिंग' करने का आग्रह करना उचित है? ऐसा किए जाने पर एक वृद्धा ने स्वास्थ्यकर्त्ता द्वारा मां के दूध की महत्ता पर प्रकाश डालने के बाद पूछा- आप हमें यह क्यों बता रहे हैं? हमने अपनी कोख से जन्मी पीढ़ियों को अपना दूध पिलाकर पाला-पोषा है। आप ये बातें शहरी महिलाओं को क्यों नहीं बताते?

वह स्थिति बदलने के लिए जरूरी है कि समाज के एक बड़े भाग और समाज के विभिन्न वर्गों के संचारकर्ताओ या कम्यूनिकेटर्स के बीच संपर्क की कड़ियां जोड़ी जाए। केवल स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं, स्वयं सेवकों, परंपरागत रूप से स्वास्थ्य सेवाएं देने वालों के बीच ही सांमजस्य नहीं हो बल्कि इन सबको सभी संचार माध्यमों के संचारकर्त्ताओं, शिक्षकों, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक धारणाएं बदलने वाले तथा नेतृत्व करने वाले लोगों के साथ जोड़ा जाए । ऐसा होने से विभिन्न प्रकार के माध्यमों के संदेश और संचार के तरीकों एव प्रणालियों का एक पुल बनेगा तथा लोगों में ऐसा करने के बाद स्वास्थ्य के प्रति जागृति का संदेश देने या संचार की प्रक्रिया को सार्थक रूप देने का कार्य संपन्न हो सकेगा।

ग्रामीण संचार का मूलाधार है- सूचना, शिक्षा और संचार । इस व्यूह रचना के साथ देश की सूचना नीति तय होनी चाहिए। स्वास्थ्य सेवाओं या स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में जन माध्यमों या 'मास मीडिया ' का इस्तेमाल करने की, दिशा में सुनियोजित प्रयास किए गए हैं। मुद्रण या इलेक्ट्रोनिक माध्यमों का सूचनाओं के आदान- प्रदान में निरंतर उपयोग करने का काम बढ़ रहा है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय तथा इसकी माध्यम इकाईयां या प्रचार इकाईयां जैसे विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय (डी.ए.वी.पी), क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय (डी.एफ.पी.) तथा फिल्म प्रभाग एवं इलेक्ट्रोनिक माध्यम, स्वास्थ्य, बालकों की देखभाल आदि के संदर्भ में पोस्टरों, फोल्डरों, प्रचार पुस्तकों, प्रदर्शनियों एवं लघु फिल्मों द्वारा अभियान चलाए जाते हैं।

सूचना ग्रामीण समुदाय तक पहुंचे तथा उनके लिए अधिकतम उपयोग हो तथा उसकी भाषा ग्रामीणों की समझ में आए।

लेकिन सूचना चक्र का यह तो एक बिन्दु है। दूसरे सिरे या बिंदु पर यह दर्शन है कि संचार का अर्थ केवल संदेश का प्रसारण है और उद्देश्य मनुष्य के व्यवहार में अधिक से अधिक परिवर्तन लाना है। लेकिन यथार्थ में स्वास्थ्य, बच्चों की देखभाल, पोषण, परिवार कल्याण, साक्षरता, कानूनी अधिकारों, नागरिक दायित्वों, पर्यावरण, ऊर्जा- संरक्षण आदि के प्रति चेतना ग्रामीण जीवन की प्रणाली या ग्रामीण जीवन के अस्तित्व के ढांचे की सर्वोच्च प्राथमिकताएं है।

1.11 बी.ओ.टी. सडक निर्माण योजना

राजस्थान में लोकप्रिय

सड़कें किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती हैं तथा जिस राष्ट्र के परिवहन की जितनी अधिक सुविधाएं होंगी, भौतिक संसाधनों के विकास में वह राष्ट्र उतना ही अधिक गतिशील होगा । इन्हीं सुविधाओं के चलते भारत में महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों की गणना अग्रिम पंक्ति में है । राजस्थान सडकों के मामले में पिछड़ा अवश्य है लेकिन हाल ही में राज्य में 'बी. ओ टी.' (बिल्ट, आप्रेशन एंड ट्रांसफर) अर्थात् ' बनाओ, संचालन और हस्तांतरण' योजना के अत्यधिक लोकप्रिय एवं सफल होने से राजस्थान के शीघ्र ही सडकों के मामले में अन्य राज्यों से अग्रणी होने की पूरी संभावना है।

बी. ओ. टी. योजना सर्वप्रथम राऊ पीतमपुर (मध्य प्रदेश) में शुरू की गयी थी। यह वास्तव में राजकीय निगमों द्वारा वित्त पोषित थी। महाराष्ट्र में थाणे में एक परियोजना इसी तर्ज पर लागू की गई थी जिसके वित्तीय संसाधनों में राज्य सरकार का बड़ा योगदान था। राजस्थान ने भी इस दिशा में पहल की और पहले के विभिन्न अवरोधों को ध्यान में रखते हुए कदम उठाए। भूमि अधिग्रहण, अलाइनमेंट में आने वाले अवरोध दूर करने, निर्माण-कार्य के संबंध में प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वीकृतियां अथवा अनुमतियां दिलवाने का सारा दायित्व राज्य सरकार ने अपने ऊपर लिया। निवेशक को राज्य सरकार अपना सहयोगी एवं सहभागी मानती है तथा उनकी कठिनाइयों के समाधान की दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहती है । कुछ परियोजनाओं के राज्य में लागू करने के अनुभवों के आधार पर राज्य सरकार ने निश्चय किया कि बी. ओ टी. की समस्त परियोजनाओं के लिए ' त्रि-पक्षीय समझौता' किया जाना चाहिए । इसमें एक पक्ष सरकार का, दूसरा निजी निवेशक का तथा तीसरा वित्तीय संस्थान का हो । इस व्यवस्था के उत्साहवर्धक लाभ सामने आए तथा निवेशक राज्य की ओर आकृष्ट होने लगे । बी. ओ टी. योजना को त्रि- पक्षीय समझौते के बाद वैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया जबकि पहले सबसे बड़ी बाधा वित्तीय संस्थाओं की वसूली की गारंटी को लेकर थी । अब यह तय किया गया कि यदि निवेशक वित्तीय संस्थाओं को उनकी राशि नहीं लौटाते, तो वे स्वयं ' टोल टैक्स' वसूल कर सकती है ।

आजाद भारत में बृहद् राजस्थान के निर्माण के पश्चात् पहली पंचवर्षीय योजना में सड़क निर्माण के लिए जहां योजनागत प्रावधान का लगभग 8 प्रतिशत व्यय सडकों एव यातायात सुरक्षा के लिए रखा गया था, वहीं सातवीं पंचवर्षीय योजना तक आते- आते यह घटकर मात्र 2.6 प्रतिशत रह गया। इस प्रकार निरंतर हास के कारण राज्य में परिवहन का समुचित आधारभूत ढांचा खड़ा नहीं हो पाया। जिन सड़कों का निर्माण किया गया, उनके लिए भी इस बात की पूरी सावधानी नहीं बरती गई कि भविष्य में इन पर यातायात का घनत्व क्या होगा? इसके फलस्वरूप जिस मानक स्तर का कार्य होना चाहिए था, वह वहां नहीं हो पाया।

आठवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में सड़क के मामलों में जागरूक लोगों ने यह अनुभव किया कि राज्य में इस विषम स्थिति से निपटने के लिए और अधिक संसाधनों को जुटाना पड़ेगा। साथ ही राज्य में सड़क विकास की एक दिशा निर्धारित करने की आवश्यकता भी महसूस की गई। शीघ्र ही राज्य में 1994 में सड़क नीति का निर्माण किया गया तथा राजस्थान इस क्रम में देश का पहला राज्य था । इस नीति के तहत वर्ष 1971 की जनसंख्या के अनुसार

एक हजार से अधिक आबादी वाले समस्त गांवों, ग्राम पंचायत मुख्यालयों तथा विकास केंद्रों को सडकों से जोड़ने का प्रावधान रखा गया । साथ ही, सभी जिला मुख्यालयों को दो लेन वाली सडकों से और सभी उपखंड, तहसील तथा पंचायत समिति के मुख्यालयों को डामर की सडकों से जोड़ने का प्रावधान किया गया । राज्य में 1990 तक जहां 10,700 गांव सडकों से जुड़े हुए थे, वहीं इस सड़क नीति के कारण वर्ष 1997 के अंत तक 19,500 गांवों को सडकों से जोड़ दिया गया। राज्य में नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 1991 की जनगणना के अनुसार एक हजार की आबादी वाले तथा जनजाति बहुल एव मरु क्षेत्र में 750 की आबादी वाले गांवों को सडकों से जोड़ने का संकल्प है ।

राजस्थान के 3,042 लाख वर्ग किलोमीटर विशाल क्षेत्रफल की 4.40 करोड जनसंख्या के घनत्व के मद्देनजर इस सड़क नीति पर अमल के लिए बहुत बर्ड धनराशि की आवश्यकता महसूस की गई जबकि राज्य के योजनागत संसाधन सीमित हैं और इनसे सड़क निर्माण का कार्य विशाल परिमाण में होना असंभव है। इस समस्या के मद्देनजर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से मिट्टी का काम तथा दो परत गिट्टी का कार्य इस क्रम में कराए जाने का निर्णय हुआ। साथ ही, इस बात को भी देखा गया कि भविष्य में उस सड़क पर कितना यातायात गुजरेगा और क्या सड़क यातायात के दबाव को सहन कर सकेगी। इस क्रम में कृषि विपणन बोर्ड, केंद्रीय योजनाओं तथा अन्य विभागीय संसाधनों का उपयोग करने का निर्णय भी हुआ। आठवीं पंचवर्षीय योजनाकाल में विश्व बैंक ऋण और कृषि विकास परियोजना के तहत मिलने वाले ऋण से भी सड़क योजना का एक भाग पूर्ण किया गया । फिर भी इस क्रम में आवश्यक साधनों की पूर्ति होती नजर नहीं आई।

इन परिस्थितियों के मद्देनजर नीति क्रियान्वयन के क्रम में संस्थागत वित्त और निजी निवेश के आधार पर विकास के नए आयाम ढूँढे गए। अन्य राज्यों में जहां इस दिशा में अभी प्रारंभिक कार्यवाही हो रही है, वहीं राजस्थान में बी.ओ.टी. योजना के आधार पर 36 करोड़ रुपये की लागत के तीन महत्वाकांक्षी सड़क कार्य पूर्ण हो चुके हैं । इनमें हाल ही में 10.25 करोड़ रुपये की लागत से ब्यावर-पाली- अहमदाबाद राष्ट्रीय राजमार्ग- 14 पर 'पाली बाईपास' मार्ग का लोकार्पण किया गया। इसके अलावा 2.95 करोड़ रुपए की लागत से पाली- सिरोही राष्ट्रीय राजमार्ग पर करौंटी पुल का निर्माण 18 माह के बजाय 11 माह में पूरा करके उसका लोकार्पण किया गया। इसके अलावा 24 करोड़ रुपए की लागत वाली उदयपुर 'बाईपास सड़क' का भी लोकार्पण इस योजना के तहत किया गया। राज्य में तीन और सड़क परियोजनाएं बी.. टी. योजना का आधार पर मंजूर की जा चुकी हैं, जिन पर शीघ्र ही कार्य शुरू होने जा रहा है।

वैसे देखा जाए तो बी. ओ. टी. योजना' बनाओ, संचालन और हस्तांतरण' के सिधान्त पर आधारित है तथा देश की एक प्रोजेक्ट डेवलपमेंट कंपनी- ' ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड' इस योजना पर कार्य कर रहे हैं। प्रस्तावित परियोजना, टी. सी. आई इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस लिमिटेड को बी. ओ टी. के आधार पर राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत किया गया है। यह कंपनी टी. सी. आई. भोरुका कंपनी समूह के अधिकार क्षेत्र में है तथा इसका वार्षिक टर्न ओवर 600 करोड़ रुपए का है। कंपनी का मुख्य उद्देश्य एव कार्य सड़क, रेल, पुल, नहरों बंदरगाहों के

निर्माण एव अनुरक्षण का है। साथ ही यह सरकारी संपत्तियों के प्रबंध, वित्तीय, लीज, विकास तथा गिरवी रखने का काम भी करती है। कंपनी की व्यवस्था उच्च व्यवसायी प्रबंधकों तथा उच्च योग्यताधारी अभियंताओं और वित्तीय विशेषज्ञों के हाथ में है। कंपनी भारत सरकार के भूतल परिवहन मंत्रालय के अधीन कार्यरत भारतीय राष्ट्रीय उच्च राजमार्ग प्राधिकरण से प्रतिबद्ध होकर राजस्थान सहित अन्य राज्यों में भी महत्वाकांक्षी योजनाओं को अंजाम दे रही है।

पश्चिमी राजस्थान के पाली शहर में वाहनों के बढ़ते जमघट, ध्वनि एव वायुप्रदूषण, सड़क के आस-पास बढ़े अतिक्रमण और कॉलेज- विद्यालय- आवासीय सुविधाओं में वृद्धि के कारण इस योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या- 14 पर शहर से बाहर की ओर एक बाईपास बनवाया गया। इसके लिए 22 नवंबर 1996 को समझौते पर हस्ताक्षर हुए। तत्पश्चात राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या- 14 के 106 कि. मी. से 114 कि. मी. की दूरी के मध्य आवश्यक 263 बीघा भूमि को अधिग्रहण कर उस पर 7 कि. मी. बाईपास बनाना तय हुआ। इस क्रम में 18 दिसंबर 1996 को राज्य के सार्वजनिक निर्माण विभाग मंत्री ने बाईपास की आधारशिला विधिवत रूप से रखी। इसे दो वर्ष की अवधि में बनाने का अनुमान था लेकिन कंपनी की तत्परता से 15 माह में ही पाली बाईपास निर्मित हो गया।

यह बाईपास पाली शहर के आवासीय क्षेत्र से बाहर होने कारण इसकी दूरी में भी एक किलोमीटर की कमी हो गई । बाईपास दो लेन में बनाया गया तथा बीच में 40 पाटों (स्पान) वाले चार पुलों और दो छोटी पुलियाओं जिनकी लंबाई 400 मीटर है, को भी बनाया गया। वर्तमान में दो लेन वाले इस बाईपास मार्ग को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर चार लेने में परिवर्तित करने का प्रावधान भी रखा गया है। इसके अलावा मार्ग में सुविधा की दृष्टि से स्कूल, पंप, मोटेल, रेस्तरां तथा आटोमोबाइल की दुकानें और दोनों किनारों पर वृक्षारोपण करने की संभावनाएं रखी गई हैं।

संक्षेप में इस प्रकार की बी.ओ.टी. आधारित योजनाओं की राज्यं में संभावनाओं का क्रम जारी है तथा राज्य सरकार इन कार्यो के इच्छुक निवेशकों को उनके सामर्थ्य, संसाधन एवं क्षमता में करवाने के लिए प्रोत्साहित करती है। सरकार निवेशक को एक प्रतिष्ठित सहयोगी के रूप में लेती है तथा राष्ट्र के भौतिक विकास की ओर अग्रसर बनाने वालों की आकांक्षाओं-प्रेरणाओं को जगाने के लिए कृतसंकल्प है। सरकार चाहती है कि बी. ओ टी. जैसी योजना में सरकार का एक पैसा भी व्यय न हो ताकि भ्रष्टाचार का प्रश्न न रहे। वहीं दूसरी ओर निजी निवेशक वित्तीय संस्थाओं से धन लेकर सडकों सहित अन्य निर्माण कार्य करें और टोल टैक्स के माध्यम से लागत वसूल कर सरकार के सुपुर्द कर दें। लोकतांत्रिक व्यवस्था में इस प्रकार का साफ- सुथरा एवं निष्कलंक कार्य से आने वाले समय में राष्ट्रीय विकास के कीर्तिमान स्थापित किए जा सकते हैं।

-पी. आर. त्रिवेदी

(कुरुक्षेत्र दिसंबर, 1998 से साभार)

1.12 ग्रामीण विकास की शब्दावली

ए.आर.ड्ल्यु एस.पी - त्वीरत ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम

ए.ए.आर.ओ.-अफ्रीकी	-	एशीयाई ग्रामीण पुनर्निर्माण सं गठन
बी.एल.सी.सी	-	खण्ड स्तरीय समन्वय समिति
बी.पी.एल.	-	गरीबी रेखा से नीचे के लोग
कपार्ट	-	लोक कार्यक्रम, एव ग्रामीण प्रौद्योगिकी परिषद्
सिरडेप	-	लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्र द्यो गिकी पीरषद
सी.आर.आई.पी.	-	कंप्यूटरीकृत ग्रामीण सूचना प्रणाली परियोजना
सी.जी.ड्व्ल्यु बी.	-	केंद्रीय भू जल बोर्ड
सी.आर.एस.पी.	-	केंद्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम
सी.बी.सी.एस.	-	समुदाय आधारित संपर्क सेवाएं
सी.एस.आई.आर.	-	वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद
सीडा	-	स्वीडिश इंटरनेशनल डवलपमेंट कोऑपरेशन एजेंसी
डी.डी.पी.	-	मरुभूमि विकास कार्यक्रम
डेनिडा	-	डेनिश इंटरनेशनल डवलपमेंट एजेंसी
डी.पी.ए.पी	-	सूखा - बहु ल क्षेत्र कार्यक्रम
डी. एम. आई.	-	विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय
डवाकरा	-	ग्रामीण महिला एवं बाल विकास योजना
डी.आर.डी.ए.	-	जिला ग्रामीण विकास एजेंसी
डी.एल.सी.सी.	-	जिला स्तरीय समन्वय समिति
डी.एस.एम.एस.	-	जिला आपूर्ति एवं विपणन सोसायटी
डी.ड्व्ल्यु.डी.	-	बंजरभूमि विकास विभाग
ई.ए.एस.	-	सुनिश्चित रोजगार योजना
ई.एस.सी.ए.पी	-	एशिया तथा प्रशांत आर्थिक एवं सामाजिक आयोग
इ.टी सी.	-	विस्तार प्रशिक्षण केंद्र
एफ.सी.पी.	-	परिवार ऋण योजना
जी.के.वाई.	-	गंगा कल्याण योजना
एच.एल.सी.सी.	-	उच्च स्तरीय ऋण समिति
एच.ए.डी.पी.	-	पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम
एच.सी.एम.आर.आई.पी.ए.	-	हीश्चंद्र माथुर ग्रामीण लोक प्रशासन संस्थान
आई.ए.वाई.	-	इंदिरा आवास योजना
आई.सी.ओ.आर.	-	बढ़ता पूंजी उत्पाद अनुपात
आई.आई.पी.ए.	-	भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
आई.आई.एम.	-	भारतीय प्रबंध संस्थान
आई.आई.एम.	-	भारतीय प्रबंध संस्थान
आई.आर.डी.पी.	-	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
आई.आर.एम.ए.	-	भारतीय ग्राम प्रबंध संस्थान

आई.सी.डी.एस.	-	समेकित बाल विकास योजना
आई.ई.सी.	-	सूचना शिक्षा और संचार
आई.डव्यलु.डी.पी.	-	समेकित बंजरभूमि विकास परियोजना
आई.सी.ए.आर.	-	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
आई.ड्व्ल्यु.डी.बी.	-	समेकित बंजरभूमि विकास बोर्ड
आई.टी.ओ	-	औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थान
जे.आर.वाई.	-	जवाहर रोजगार योजना
एल.ए.एन.	-	लोकल एरिया नेटवर्क
एल.आर.	-	भूमि सुधार
मैनेज	-	राष्ट्रीय कृषि विस्तार प्रबंध संस्थान
एम.आई.एस.	-	प्रबंध सूचना प्रणाली
एम.एन.पी.	-	न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम
एम.डव्यलु.एस.	-	दस लाख कुओं की योजना
निकनेट	-	राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क केंद्र
एन.इ.आर.सी.	-	पूर्वोत्तर क्षेत्रीय केंद्र
एन.आई.आर.डी.	-	राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान
एन.आई.ए.एम.	-	राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान
एन.आई.बी.एम.	-	राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रबंध संस्थान
नाबार्ड	-	राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक
एन.एस.ए.पी.	-	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम
एन.ओ.ए.पी.एस.	-	राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना
एन.एफ.बी.एस.	-	राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना
एन.एम.बी.एस.	-	राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना
एन.आई.यू.ए.	-	राष्ट्रीय शहरी कला संस्थान
एन.एच.आर.डी.पी.	-	राष्ट्रीय मानव संसाधन विकास कार्यक्रम
एन.डन्ल्यू.डी.बी.	-	राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास बोर्ड
पी.ई.ओ.	-	कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन
पी.आई.ए	-	परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी
पी.आर.आई.	-	पंचायती राज संस्थाएं
आर.डी.एन .डी.ड्व्ल्यु.एम.	-	राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन
आर. जी.एन. डी. ड्व्ल्यु. एम. ए	-	राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन प्राधिकरण
आर.पी.डी.एच.	-	पुनर्गठित सार्वजनिक प्रणाली
आर.एस.एम.	-	ग्रामीण सेनेटरी मर्ट्स
सार्क	-	दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन
एस.सी.पी	-	विशेष घटत योजना
एस.सी.आर.	-	सब्सिडी ऋण अनुपात

एस.डी.सी.	-	स्विस इ्व्लोपमेंट कारपोरेशन
एस.आई.आर.डी.	-	राज्य ग्रामीण विकास संस्थान
एस.एल.सी.सी.	-	राज्य स्तरीय सम्नव्य समिति
एस.ऑर.ए.एंडयू.एल.आर.	-	राजस्व प्रशासन का सुद्रढिकरण और भूमि अभिलेखों का अध्त्नीकरण
एस.एस.आर.सी.	-	जांच, स्वीकृति और समीक्षा समिति
एस.एफ.सी.	-	राज्य वित्त आयोग
ट्राइसेम	-	ग्रामीण युवा स्व्रोजगार प्रशिक्षण योजना
टी.एस.पी	-	आधिवासी उप योजना
इ्व्ल्यु.ए.	-	वाटरसेट असोशिएशन
इ्व्ल्यु.सी	-	वाटरसेट समिति
डन्ल्यू.डी.ए.	-	बंजरभूमि विकास एजेंसी
डन्ल्यू.डी.टी.	-	वाटरसेट विकास दल
याशाडा	-	यसवंत राव चौहान विकास अकादमी

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. ग्रामीण संचार एव इसके आयाम के बारे में आप क्या जानते हैं?
2. ग्रामीण संचार के विकास चक्र पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. कृषि में सूचना की भूमिका एव पत्रकारों की भूमिका का उल्लेख कीजिए ।
4. गांवों को समझना आज जरूरी है? इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।
5. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए-

   अ. संचार की प्रकृति स. लोक परंपराएं

   ब. संचार के स्तर द. ग्रामीण विकास शब्दावली

इकाई 2 लोकमाध्यम

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पारंपरिक माध्यम या ग्रामीण माध्यम

2.3 लोक माध्यमों का परिचय

- 2.3.1 रेड, हेला, हूंडी पिटवाना
- 2.3.2 कठपुतली
- 2.3.3 लोकनाट्य
- 2.3.4 ख्याल
- 2.3.5 लोकगीत एवं नृत्य
- 2.3.6 पड
- 2.3.7 कावड़

2.4 भारत की लोककथाएं

- 2.4.1 लोककथाएं परिचय एवं परिभाषा
- 2.4.2 लोककथाओं की विशेषताएं

2.5 भारत की लोक कलाएं

- 2.5.1 परंपरा और पहचान
- 2.5.2 लोककला की विशेषताएं

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य भारतीय लोक-जीवन में प्रचलित परंपरागत या ग्रामीण माध्यमों से परिचित कराना और यह स्पष्ट करना है कि उनका उपयोग किसी संदेश के प्रचार के साथ ही मूलत: नैतिक जीवन का पाठ पढ़ाने के लिए किया जाना रहा है। ये माध्यम ग्रामीण जन-समुदाय की अपनी विशेषताओं के अनुसार होते हैं और जन- समुदाय के मनोविज्ञान, परिस्थिति तथा सामाजिक और मानसिक स्थिति सहित स्तर के अनुसार विकसित किया गया संप्रेषण तंत्र है । इस संप्रेषण तंत्र में अतवैंयक्तिक संचार की संभावना सर्वाधिक होती है। दो जनों के संपर्क के कारण यह किसी भी स्वर, शब्द, संगीत, चित्र, नाटक, नृत्य गीत आदि लोकानुरजनी कला के माध्यम से हो सकता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- लोकमाध्यमो की परंपरा को पहचान सकेगें।

- लोकमाध्यमो के मूल कथ्य और उद्देश्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- भारत की लोक कलाओ का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- लोककथाओं का परिचय और उनका ग्राम्यजीवन पर प्रभाव जान सकेंगे।
- लोकमाध्यम अपने आप में लोककला है अथवा संपूर्ण माध्यम स्वरूप, इसका भी दिग्दर्शन कर सकेंगे।
- लोकमाध्यम के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

लोकसंपर्क अथवा प्रचार-प्रसार के प्राचीनतम माध्यमों में लोककलाओं का स्थान महत्वपूर्ण है । इन कलाओं की बदौलत ही विभिन्न मतों, सिद्धांतों एव प्रवर्तकों की वाणियों, उपदेशों और मान्यताओं का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। लोकजीवन ने किसी संदेश या सीख को बृहद् स्तर तक संप्रेषित करने के लिए जिन तरीकों का ईजाद किया या काम में लिया वे परंपरागत माध्यम कहलाते हैं। आज लोककलाओं वाले माध्यम को "पारंपरिक मीडिया" अथवा " ग्रामीण संचार माध्यम" के नाम से संबोधित किया जाने लगा है। इसमें दो राय नहीं कि ग्रामीण अथवा परंपरागत माध्यमों के पीछे सभ्यता और संस्कृति के विकास की लंबी यात्रा छिपी हुई है। पारंपरिक माध्यमों की पगडंडी पर चलकर ही जनसंचार माध्यमों का विकास हो सका है। आधुनिक माध्यमों के दौर में भी ये पारंपरिक माध्यम लोकांचल में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। इसके पीछे मुख्य कारण हैं-

अ. स्थानीय बोली अथवा भाषा

ब. स्थानीय लोकधर्मी प्रदर्शनकारी प्रवृत्तियां

स. स्थानीय समुदायों से सरोकार रखने वाली प्रकृतिजन्य परिस्थितियां

इसमें से कुछ मुख्य माध्यम निम्नांकित हैं -

1. रडे, हेला, डी या ढिड्रा पिटवाना
2. कठपुतली के खेल प्रदर्शन
3. चौपाल नाटक -नाटिका
4. लोकनृत्य व गीत
5. पड़- चित्र- कथा का वाचन एवं नर्तन
6. चित्रमय चलिष्णु मंदिर कावड़ का कथा- कथन
7. स्वांग, लीला, दंगल आदि का प्रदर्शन
8. लोककथा. बातपोशी का कथा मोचन
9. ख्याल

2.2 पारंपरिक माध्यम या ग्रामीण माध्यम या लोक माध्यम

हम इन माध्यमों का विस्तृत परिचय प्राप्त करे २ रास -को ग्रामीण माध्यम कहा जाए अथवा लोक अथवा पारंपरिक माध्यम इस पर विचार करना जरूरी है। पारंपरिक माध्यम को अंग्रेजी के 'ट्रेडिशनल मीडिया' का पर्याय माना जाता है। अंग्रेजी में 'फॉक मीडिया' शब्द भी प्रचलित है जिसका पर्याय हिन्दी के 'लोक माध्यम' को माना गया है। समाजशास्त्रियों ने 'रूरल मीडिया' अथवा हिंदी में 'ग्रामीण माध्यम' संबोधन भी इसके लिए प्रयुक्त किया है। दरअसल

माध्यम के आगे पारंपरिक, परंपरागत, लोक और ग्रामीण ये विशेषण लोक-जीवन की ओर ही इशारा करते हैं।

लोक में 'परंपरा' और 'ग्रामीण' ये दोनों अर्थ में निहित हो जाते हैं। फिर देखा जाए तो सदा से शास्त्रीय या संस्कृतिक शैली और लोकशेली को अलग- अलग देखा जाकर ही इसे इंगित किया जाता रहा है। 'लोकषुच वेदेषु' जैसी उक्तियां कहकर शास्त्रकारों ने वेद से पृथक लोक की विराटता को भी देखा है। लोक पुरातन शब्द है और यह ग्राम तथा नगर दोनों के क्षेत्र का समावेश करता है। डी. श्री कृष्ण 'जुगनू के अनुसार लोक शब्द की पीरव्याप्ति ग्रामीण' अथवा 'परंपरा' से अधिक विस्तृत है और अन्य विशेषणों की अपेक्षा अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करती है।

डॉ. महेंद्र भानावत की दृष्टि में 'यह लोक जहां अपनी पारंपरिक विरासत मे अधिक पुष्ट है वहां यह अपने वर्तमान में भी कम रसलीन तथा रंगभीन नहीं है। इस प्रकार इन माध्यमों को लोकमाध्यम कहना ही उचित है। 'इसके साथ ही लोक संचार माध्यमों में लोकांचल की सभी विशेषताओं को आपाद, आद्यंत देखा जा सकता है। इनमें कृषि का आधार, समुदाय का लघु आकार, परंपरा और धर्म का महत्व संयुक्त परिवार, सादा जीवन, सामाजिक समरूपता, जाति-प्रथा, जजमानी प्रथा, भाग्यवादिता, अशिक्षा, आत्मनिर्भरता, समूह विचारों का प्राधान्य, स्त्रियों की सोचनीय स्थिति, प्राथमिक रिश्तों की प्रधानता, अपेक्षाकृत स्थिर जीवन श्रम के विशेषीकरण की गत्यात्मकता का भाव आदि मुख्य हैं । ये ही विशेषताएं लोकांचल और लोक समुदाय की स्थिरता की पृष्ठ भूमि तैयार करती हैं और अपने अनुरजंन के लिए लोकामाध्यमों का आधार भी तैयार करती है।

बोध प्रश्न- 1

1. लोकमाध्यमों की समुदाय में स्थिति को स्पष्ट कीजिए (100 शब्दों मे)
2. परंपरागत माध्यमों को क्या नाम देना उचित रहेगा यथा लोक माध्यम या ग्रामीण माध्यम? 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।
3. लोकमाध्यमों में समुदाय की किन- किन विशेषताओं को देखा जा सकता है हे दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

2.3 लोकमाध्यमों का परिचय

2.3.1 रेड, हेला, डूंडी पिटवाना

यह प्राचीनतम संचार की मौखिक परंपरा है। राजस्थान के विभिन्न गांवों में हाका- हेला करके किसी सार्वजनिक महत्व की सूचना का उद्घोष करने वाले परिवार नियत रहते हैं। यह प्राय: बलाई, साधू या अन्य कोई व्यक्ति जिसे ग्रामीण मुखिया मुकर्रर करता है, होता है जो यह कार्य करता है । जैसे- वर्षा नहीं आने पर किस दिन सामूहिक उजरनी (इंद्ररजा) की जानी है? शीतला सप्तमी कब होगी- सातम या आठम को? दीपावली चौदस की होगी या अमावस की? ऐसे असमंजस के मौकों पर एक निर्णय कर उसे हाका या रेड वालों से ग्रामीणों को सूचित करवाया जाता। राजा अथवा राणा-महाराणा द्वारा किए जाने वाले बहादुरी परक शिकार आदि

कार्यो की सूचना पर भी हाका पडवाया जाता। न्यायालयों में गवाही वाले या मुलजिम को आज भी पारंपरिक रूप में 'हाकादार' द्वारा पुकारा जाता है। कभी किसी समाज या जाति विशेष की बैठक अथवा ग्रामीण महत्व के मुद्दे पर चर्चा के लिए पंचों, मोतबिरों अथवा ग्रामीणों को बुलाना हो तब भी इस माध्यम का पयोग किया जाता है।

राजा-महाराजाओं के काल में ढूंढी पिटवाने की परपरा खूब रही है। यह परंपरा रेड और हाका से अधिक प्रभावी रही जिसमें घोड़े या ऊंट पर दो नगाड़ों के साथ एक व्यक्ति बैठ जाता है और विभिन्न चौरों, चौराहों, चौपालों एवं मंत्रणा स्थलों पर जाकर ढूंडी पीटता और राजाज्ञा का उद्घोष करता है। यह हाका कुछ इस प्रकार दिलवाया जाता है- "सुनो- सुनो गांव वालो, सुनो! कल होली के मौके पर महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री श्री 1008 श्रीश्री.... सिंह जी राज बहादुर बड़े मंगरे अहेरिया (शिकार, आखेट) खेलने पधारेंगे जो हुकुम के हाका में सबको हाजिर रहना है। जो आवेगा दो आनी पावेगा और नी आवेगा वो सजा पावेगा। ' इसी तरह अन्य विभिन्न मौके पर भी उद्घोषणाएं करने की परंपराएं रही। देहात में तुरही वादन से उद्घोषणा करने वालों का एक अलग ही वर्ग 'तुरिया' बन गया तो छी वादकों का वर्ग 'नकारची' कहलाया वहीं भुंगल बजाकर राजाज्ञा बतलाने वाले 'भूगलिया' कहलाए। लोक की यह व्यवस्था कालांतर में एक विशेष जाति का भी पर्याय बनकर उभरी।

2.3.2 कठपुतली

कठपुतली लोकजीवन में संचार का एक प्रमुख माध्यम मानी गई है। राजस्थान की नट व भाट जाति कठपुतली निर्माण और प्रदर्शन के लिए विख्यात् है। भारतीय नाट्यशास्त्र में कठपुतलियों का बड़ा महत्व वर्णित किया गया है। लकड़ी के सामान्य से टुकड़े पर राजा महाराजा से लेकर नर्तक, नर्तकी, बहुरूपिया, चोबदार, डुगडुगीवाला, सांप- सपेरा, ऊंट, हाथी, घोड़ा तथा मनोरंजन करने वालों के चेहरों को विभिन्न शक्ल सूरत में उभारकर रंग- बिलों कपड़े-लत्तों तथा कौरीकनारियों से विशिष्ट सजा देकर कठपुतली तैयार की जाती है। काठ की बनने के कारण इसे ' कठपुतली' कहा जाने लगा। अपने खेल के प्रारंभ में कठपुतली नचानेवाला शिवजी की स्तुति में जो गान करता है उसमें कठपुतली शब्द का उच्चारण किया जाता है। यथा

बैल चढ़ै शिवजी मिलै, पूरण हो सब काम ।
खेल काठपुतली करा, लेकै हरि को नारा ।।

कठपुतली भाट कठपुतली नचाते समय उसके धागे को अपनी उंगली के माध्यम से विविध भावाभिनय देता हुआ कठपुतली में प्राणों का संचार करता है। अपने मुंह में बांस की बनी छोटी खपचीवाली सीटी से चिड़िया जैसी बोली निसृतकर खेल प्रदर्शित करता है। संवाद के रूप में इस बोली को ढोलकवाली महिला उलथाकर आशय प्रकट करती है। कठपुतली की ऐसी विचित्र बोली तथा चेहरे की विशिष्ट बनावट से यह समझा जाता है कि यह मनुष्यलोक की नहीं किसी भिन्न लोक की प्राणी है।

कठपुतली का निर्माण सभ्यता के आदिकाल से होता आया है। महाभारत में विराट पर्व में बृहन्नला अर्जुन ने राजकन्या उत्तरा के लिए पुतलियां तैयार की थीं। पुतलियों की यह परंपरा जापान, इंडोनेशिया, थाइलैंड और बृहत्तर भारत के विभिन्न देशों. में प्रचलित है। कठपुतली ने

जिस प्रभावशाली ढंग से जनजीवन में कोई संदेश, कथा या चेतावनी संप्रेषित की, अन्य कोई माध्यम उसकी जगह नहीं ले पाया।

कई विद्वानों की मान्यता है कि कठपुतली के नृत्यों से ही रंगमंचीय नाटकों की उत्पत्ति हुई। इसके विपरीत पुतलीविद् पद्मश्री देवीलाल सामर कठपुतली नाटक को मानव नाट्य से सर्वथा भिन्न मानते हैं। उनकी दृष्टि में कठपुतली में प्राण नहीं होने की वजह से उनमें प्राणों की प्रतिष्ठा करनी होती है। उनमें धड़कता हुई दिल और सोचने के लिए बुद्धि नहीं होती। ये दोनों ही कार्य पुतली- चालक को करने पड़ते हैं। इन पुतलियों को बुद्धि, प्राण एवं संवेदन के लिए अन्य सजीव प्राणियों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनकी अपनी रक्त शिराएं नहीं होती। वे स्वयं गाती- बोलती नहीं। उनकी रक्त- शिराएं यदि कोई है तो वे धागे हैं जो उनके साथ लगे हुए हैं और जिनसे वे परिचालकों की थिरकती हुई उंगलियों के माध्यम से स्फुरणा प्राप्त करती हैं । उन्हें अपनी वाणी भी अपने प्रचालकों के माध्यम से ही मिलती है। उनकी आंखें हिलती नहीं, होठ चलते नहीं। फिर भी उन्हें आता चलाने, होठ हिलाने तथा अपने अंग की कुछ ही क्रियाओं से अनेक क्रियाओं का भ्रम पैदा करना होता है। कल्पना, सीमा, विवशता और भ्रम की दुनियां में विचरण करने वाले इन प्राणियों को अपनी शक्ति से भी परे काम करने पड़ते हैं जो दर्शकों को चकित कर देने वाले होते हैं।

सामान्यत: पुतलियां चार तरह की मानी गई हैं -

1. काठपुतली या कठपुतली
2. काठपुतली
3. छाया पुतली
4. दस्ताना पुतली

पुतली के ये सभी रूप भारत के पारंपरिक रंगमंच पर सक्रिय हैं। कपिला वात्स्यायन के अनुसार 'इंडोनेशिया, मलेशिया, कंबोडिया अथवा थाइलैंड के' वयंग कुलित 'या' नांग स्वेक या 'नांग थाई' के छाया रंगमंच की सामयिक परंपराओं की तुलना में परिमार्जन और परिष्कार की दृष्टि से तो हमारा रंगमंच पिछड़ा हुआ है किंतु विविधता और ओजस्विता में उससे कहीं बढ़कर है।' वयंग. गोलक किस्म की छड़ कठपुतलियों और बर्मी प्रकार की पुतलियां भारत के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। कथा, पाठ, गायन, वाद्य, संगीत और प्रस्तुतिकरण के रूप में असंख्य क्षेत्रीय विविधताओं के साथ रामायण या रामकथा भारत के छाया और कठपुतली रंगमंच पर भी छाई रही है । वस्तुत: रूपों की ओजस्विता इतनी अधिक पाई गई है कि सामयिक नृत्य निर्देशक उनका प्रयोग आधुनिक विषयवस्तुओं के चित्रण के लिए अभी तक इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं। इस रूप में पुतली एक सशक्त माध्यम है ।

पुतली को श्रेष्ठ संचार का माध्यम मानते हुए विश्व के विभिन्न देशों में नानाविध प्रयोग करते हुए हैं। कथानक के किरदार के अनुसार पुतलियां बनीं और निर्जीव पुतलियों ने काल्पनिक किरदार को जीवंत किया। जापान की कल्पना आधारित पुतलियां और थाइलैंड की कठपुतलियो ने प्रतिप्रतीकन (Counter Symbolise) के रूप में लोकवार्ताओं की प्रस्तुति दी है।

हमारे यहां नारू और निरक्षरता के उन्नमूलन, मातृ व शिशु मृत्युदर में कमी, स्वच्छ पानी का महत्व, सांप्रदायिक एकता जैसे कई सरकारी कार्यक्रमों और गैर सरकारी अभियानों में

पुतली माध्यम ने जनचेतना की दिशा में बड़ी प्रभावी भूमिका निभाई। प्रदर्शन से पहले पुतलियों के लिए आवश्यक संदेशपरक नाटक लिखे जाने की जरूरत होती है। बाद में सूत्रधार (कठपुतली संचालक) नाटक के अनुसार पुतली तैयार कर उसे मंच पर जीवित करता है। आज इन पुतलियों को प्रमुख संचार माध्यम मानते हुए उनके लिए आधुनिक उपकरणों, मंचीय साज- सज्जाओ एवं ध्वनि तथा प्रकाश साधनों का भी उपयोग किया जाने लगा है। प्रमुख इलेक्ट्रॉनिक माध्यम टेलीविजन पर भी पुतली चढ़कर बोलने लगी है। भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर द्वारा पुतली प्रदर्शन के क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग किए गए और कार्यशालाएं आयोजित की गई। सन् 1965 में बुखारेस्ट में आयोजित तृतीय अंतर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में यहां के दल ने भारत का प्रतिनिधित्व कर परपरा-प्रयोगमूलक 'मुगल दरबार' खेल प्रदर्शित किया जिसे संपूर्ण विश्व का पहला पुरस्कार प्राप्त हुआ। उसके बाद तो राजस्थान की कठपुतली कला का दबदबा पूरे विश्व में फैल गया।

2.3.3 लोकनाट्य

मूलत: लोकनाट्य लोकानुरंजन का एक सशक्त माध्यम है, परंतु इस माध्यम ने लोक जीवन को शिक्षित-प्रशिक्षित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोकनाटय के लिए चार चीजें आवश्यक हैं -

1. कोई निश्चित पारंपरिक कथा और संवाद
2. लोक कलाकार
3. लोकरंगमच
4. दर्शक लोकसमाज

लोक समूह की कोई कृति जब नाट्य रूप में कथोपकथनों के माध्यम से सधे हुए कलाकारों द्वारा लोकमंच से लोक समूह के बीच प्रस्तुत की जाती है तो उसे लोकनाट्य कहा जाता है। कथोपकथन वाले इस माध्यम के स्वरूप को निखारने के लिए नृत्य, संगीत, अभिनय तथा वेषभूषा आदि का समावेश भी सुनिश्चित रहता है। डी. श्याम परमार ने लोकनाट्य की परिभाषा में कहा है कि 'लोकनाट्य से तात्पर्य नाट्य के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्व साधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने - अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।

डॉ. महेंद्र भानावत के शब्दों में 'लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने - अपने क्षेत्र के लोकमानस को आल्हादित, उल्लासित एवं अनुप्राणित करता हैं, लोकनाट्य कहलाता है, भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र के तेरहवें अध्याय में लोकधर्मी नाट्य परंपराओं के लक्षणों पर विचार किया है। उन्होंने लोकधर्मी नाटक को स्वभाविक ढंग से प्रकट होने वाला नाटक कहा है और दूसरे शुद्ध स्वाभाविक व विकृत स्वाभाविक दो भेद बताए हैं। इन दोनों ही रूपों का मूल आधार लोकवार्ताएं और लौकिक क्रियाएं है।

पद्मश्री देवीलाल सामर ने लोकरंगमंच के संबध में अपने विचार इस प्रकार रखे हैं - 'लोक रंगमंच की कोई मर्यादा नहीं होती। वह किसी व्यक्ति, जाति, समाज तथा संप्रदाय- विशेष के लिए नहीं होता। उसका सार्वजनिक पक्ष प्रबल होता है, जहां अधिक से अधिक लोगों को अपनी रचनाएं प्रस्तुत करने का सार्वजनिक अवसर मिलता है। रंगमंच की कल्पना किसी एक

मकान, चबूतरे, भव्य नाट्यगृह तथा साज सजायुक्त किसी ऊंचे स्थल तथा अट्टालिका से ही साक्षात्कार नहीं होती। वह कोई स्थूल नहीं। वह तो एक महान् विचार है तथा प्रवृत्ति मात्र है जिससे मनुष्य की रागात्मक तथा रचनात्मक वृत्तियों को अभिव्यक्ति मिलती है। रगमंच एक ऐसा अद्रश्य दर्पण है जिसमें समाज के हृदय और उसकी कल्पना का एक अत्यंत सुमधुर स्वरूप अंकित हो जाता है और उसी में वह अपनी उदात्त भावनाओं का नाना स्वरूपों में दर्शन कर लेता-है। वह ऐसा दर्पण है जिसमें समाज की आनंददायिनी भावनाएँ द्विगुणित प्रकाशमान होकर समाज को जीवन प्रदान करती है।

चौपाल नाटक भी लोकनाट्यों का ही एक संक्षिप्त और प्रभावी रूप है। किसी अभियान के संदेशों के प्रचार- प्रसार के लिए इस माध्यम का पिछले करीब दो दशकों से उपयोग किए जाने लगे। सफदर हाशमी, शम्सुअल इस्लाम आदि ने नुक्कड़ नाटकों की जो शुरुआत की वे ही देहात में चौपाल पर खेले जाकर 'चौपाल नाटक' कहलाए। देहात में परंपरानुसार प्रदर्शन स्थल चबूतरे, हथाई अथवा चौर- चँवरे कहे जाते हैं। माच भी बनाये जाते हैं । 'तुर्रा कलंगी' के पारंपरिक ख्याल लोकजीवन में 'माच के ख्याल' ही कहे जाते हैं। इनके अलग- अलग अखाड़े होते हैं जो चित्तौड़गढ़ से लेकर मालवा के उज्जैन तक फैले हुए हैं। तमिल के तेरकूतु, ब्रज में भगत, 'बंगाल में नकाब, राजस्थान मे जयपुरी ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, नागौरी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, तमाशा, रम्मत, स्वाग, छंया (खोड्या), रासधारी, रामलीला,' सनकादिक लीला, आंध्र का कुरवजि, बिहार का विदेशिया आदि पारंपरिक लोकनाटकों के नाम हैं जो सालों से मनोरंजन के साथ ही मानव को शिक्षित एवं संसकारित बनाने का संदेश देते आ रहे हैं।

राजस्थान में आदिवासी भीलों का 'गवरी' लोकनाट्य शिव- भस्मासुर के पौराणिक आख्यान को जीवंत करने के साथ- साथ कई तरह के सामाजिक एवं धार्मिक प्रहसनों को मंचित कर राह चलते मुसाफिर को देखने के लिए आकर्षित किए रहता है। भील समुदाय के छोटे बालक से लेकर बड़े बूढ़े तक इसमें भाग लेकर पूरे सवा माह अपने घर से बाहर' रहते हैं। इसका प्रदर्शन खुले में दिनभर के लिए होता है।

2.3.4 ख्याल

मोहनलाल गुप्ता के शब्दों में - "यह वह जमाना था जब न रेडियो थे, न टेलीविजन, न सिनेमा। बस, लोगों का मनोरंजन तरह- तरह के ख्याल-तमाशों से ही होता था। ख्याल-तमाशे थे राजा रिसालू पूरणमल, राजा गोपीचंद, राजा भरथरी, प्रहलाद, ध्रुव, कृष्ण गूजरी, देवर भौजाई, हीरा रांझा, गुलबकावली आदि और खेले जाते थे शहर के चौराहों पर, ऊंचाई पर तख्त लगाकर, ताकि दर्शकों को ठीक से दिखाई दे सके। चौराहे इसलिए पसंद किए जाते थे कि चारों तरफ से आने जाने वाले लोग उनमें शरीक हो सके। अभिनेता गोटे के कपड़े और पत्री की चमकदार टोपी पहन कर हीरो बन जाते थे और पार्ट अदा करते थे।

कथोपकथन के साथ वाद्य केवल नगाड़ा ही प्रमुख होता था जो अभिनेता के कान पर हाथ लगाकर जोर से बोलने के साथ कड़ाम धिन का धमाका लगाता था। कथोपथन शेरों शायरी

में नकारे के साथ होता था। अभिनेता अट्टे पर खड़े होकर शेरी - शायरी. मसनवी, नजम में अपना रग बिखेरते थे। इस प्रकार के ख्याल- तमाशे बनाने वाले ऊर्दू - फारसी के जानकार शायर होते थे, जिनकी रचनाओं में कथोपकथन, नृत्य, गान, और बीच- बीच में व्यंग्य का मसाला भी होता था। जनता को प्रसन्न करने के लिए विचित्र वेशभूषा भी पहनी जाती थी। अच्छा कथोपकथन कहने पर जनता रूमाल में पैसे बाँधकर अड़े (स्टेज) पर फेंकती थी। खेल-तमाशों की कहानियों में विचित्र घटनाओं का समावेश होता था। पात्र नृत्य के माध्यम से जितना अधिक कूद-फाद करता और अदाए दिखलाता, उतना ही लोग प्रसन्न होते थे और पैसे फेंकते थे। कहानियों की रचना करने वाले उस्ताद कहलाते थे। पात्रों कीं गश्त का प्रबंध मोहल्ले के अलग-अलग लोगों की तरफ से होता था। स्टेज आठ- दस फीट ऊंचा होता था। ख्याल- तमाशे का आनंद सड़क पर बैठकर कर ही लिया जाता था। अपनी जगह निश्चित कर बैठने के लिए झगड़े टंटे हो जाया करते थे। पात्र के अच्छे अभिनय से प्रसन्न होकर दर्शक सीने पर हाथ रख कर अपने प्रेम का इजहार- 'मेरी जान', 'हाय मेरी प्यारी' अथवा 'वाह झंडी' कहकर करते थे। स्त्रियों के लिए झंडी, रंडी अथवा हरजाई का प्रयोग सामान्य बात थी। इस तरह के संबोधन का प्रयोग इशा अल्लाह खां की 'रानी केतकी की कहानी' में भी मौजूद है।

ख्याल पूरणमल का तो लोगों के दिलों को उल्लासित कर देता था। राजा की रानी और पूरणमल की सौतेली मां, युवा पूरणमल पर आसक्त होती है, 'पूरणमल तेरे हुस्न पर मैं हो गई कुरबान। सेज रमा कर सुख देवो तो मेरा बचे प्राण। 'पूरणमल इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है, तो रानी प्रतिशोध लेने के लिए अपने कपड़े फाड़कर पूरणमल पर बलात्कार का इल्जाम लगा देती है और राजा को उसकी बदचलनी की शिकायत करती है।

राजा ने पूरणमल की आंखें निकलवा देने का हुक्म दे दिया। रानी ने पूरणमल की आखें निकलवा कर एड़ी से रगड़ने की इच्छा जाहिर की। जल्लाद पूरणमल की आंखें निकालने को ले गए पर उन्होंने दया कर पूरणमल की आंखों के बदले बकरे की आंखें निकाल कर राजा' को दिखला दी। बाद में राजा को असलियत का पता चल गया और उसने रानी को मरवा देने को आज्ञा दे दी। पूरणमल ने माँ समझ कर राजा से अनुनय- विनय कर रानी को बचवा लिया। रानी के दुश्चरित्र तथा स्त्री जाति की बेवफाई पर दर्शक लोग धिक्कारते थे। पूरणमल की वफादारी पर वाहवाही होती थी।

एक समय था जब नाथ संप्रदाय के जोगियों का बड़ा बोलबाला था। यहां तक कि राजा लोग भी उनके चमत्कारिक प्रभाव में आकर राजपाट छोड़कर उनके शिष्य हो जाते थे। राजा गोपीचंद जलंधरनाथ के और भरथरी गोरखनाथ के शिष्य हो गए थे।

'राजा भरथरी का ख्याल' भी मिलीजुली राजस्थानी और उर्दू मिश्रित बोली में खेला जाता था। भरथरी सिंह के शिकार को जाता है, पर सिंह जंगल में मिलता नहीं। हिरणों की डार मिलती है। राजा हिरणियों के साथ एक हिरण पर तीर चलाना चाहता है। इस पर एक हिरणी राजा को कहती है : 'छोड़ देवों मिरंगा ने राजा अरज करू हर बार। हाजर है चौरासी हिरण्या चाहे तो ल्यो मार। म्हां सब हिरण्या कै माही यो म्हांको भरतार' । 'हिरणी तिरिया ने नहीं मारा,

ए म्हे करा मिल पर बार' ।। राजा हिरण को मार लेता है । हिरणी प्राण छोड़ देती है और राजा को शाप दे देती है : 'मरसी सारी डार मिलग के कारणे । फिरतो फिरजे राजा दर दर वारणे' ।।

राजा पुनः सिह के शिकार के लिए अपने एक मित्र के साथ जाता है और वहां हिरणी के सती होने की घटना का स्मरण हो आता है । राजा अपनी रानी पिंगला की वफादारी की परीक्षा लेना चाहता है। वह सिह के द्वारा स्वयं कै मारे जाने की झूठी खबर अपने मित्र के हाथ रानी के पास भेज देता है और शक के लिए खून से तने कपड़े भी भेजता है। रानी पिगला खून से सने कपड़े देखकर राजा की मृत्यु को साक्ष्य समझ कर प्राण त्याग देती है।

राजा पिंगला के वियोग में विह्वल हो जाता है 'हाय पिंगला! फिरतो फिरयूं खाक रमाऊ तन मैं। पिंगला खातर जोगी बन कर करू तपस्या वन में ' ।। जोगी बनाने से पहले गुरु लोग स्त्रियो का मोह छुड़वाने के लिए तरह- तरह के प्रपंच रचते थे। सती हो जाने को भी स्त्री के चरित्र की श्रेष्ठता का प्रमाण माना जाना सामान्य बात थी। राजा पश्चाताप करता है और इसी समय गुरु गोरखनाथ आते हैं और रानी को जीवित कर देते हैं। राजा को जोग न लेकर महल में रानी के पास जाने की कहते हैं, परंतु राजा गोरखनाथ से चेला बनाने का आग्रह करता है 'रानी पिंगला महल में म्हानै जोग दिरा द्यो जी। काना में मुद्रा डालो भगवां वस्तर पहनाओ जी' । गोरखनाथ भरथरी से कहते हैं 'झोली ले ल्यो हाथ में महलों में अपने जाए। रानी को माता कह पुकारो भीख लेकर आइए ।। रानी को माता कह पूकारो भीख लेकर आइए' ।।

गोपीचंद को भी गुरु जलंधरनाथ सी से भीख माग कर लाने को कहते हैं और भरथरी को भी गोरखनाथ ऐसा ही करने को प्रेरित करते हैं। राजा भरथरी महलों में रानी से भीख मांगने जाता है : 'बासी कूसी टुकड़ो दे द्वौ ना चाहिए धन माया। हुकुम दिया है गुरु हमारा आकर अलख जगाया ' ।। रानी को पता नहीं होता है कि वह प्राण त्याग चुकी थी और वापस गुरु द्वारा जीवित कर दी गई है। रानी की दासी ड्योढ़ी में आकर राजा को जोगी वेष में पहचान लेती है : 'भिक्षा लाई महल से लेवो जोगी राज। भर मोत्यां को थाल मैं ल्याई थांकै काज।

भरथरी : 'मोत्यां को मैं काई करू देवो खाक में डाल। बासी टुकड़ा हो तो द्यो झोली में घाल' ।।

रानी विश्वास नहीं करती कि भरथरी जोगी बन कर भिक्षा मांगने आया है। पिंगला भरथरी से 'राजा आओ महला माए जोग दीरो मेलो "। 'माता जोग न छोड़्यो मुकत को है गेलो'।।

गोरखनाथ गुरु हमारे दीन्हो निरमल ग्यान। ग्यान सीख कर गुरु से बदलो लेवै वो तरा बेईमान ।।

भरथरी पिंगला की यही कथा दूसरे ढंग से भी राजा को जोगी बन कर वैराग्य दिलाने की पुष्टि करती है ।

भरथरी को किसी साधु ने अमरफल दिया। राजा ने अमर फल रानी को दिया, ताकि वह सदा सुंदर और यौवनपूर्ण रहे और वह सर्वदा उसका उपभोग कर सके । रानी पिगला का संबंध नगर के कोतवाल से था। रानी ने वह अमृतफल कोतवाल को दे दिया कि वह अमर हो जाए। कोतवाल ने फल वापस राजा को दे दिया। फल जब राजा के पास पहुच गया, तो उसे

रानी के चरित्र पर संदेह हो गया और उसे विरक्ति हो गई। वह गोरखनाथ का शिष्य बन गया। राजा ने जोगी बनकर श्रगार शतक और वैराग्य शतक की रचना की, जो जगत् विख्यात हैं।"

2.3.5 लोकगीत के नृत्य

लोकगीत संसार के प्राचीनतम संचार माध्यम हैं। अपने जज्बात की सुरबद्ध सहज रूप से किसी अन्य से पहुंचाने और उसकी स्मृति को तरोताजा रखने के लिए लोकगीतों व लोक नृत्यों का प्रयोग होता आया ह । मानव चाहे सभ्य हो अथवा असभ्य, उसमें अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने की प्रबल इच्छा और क्षमता होती है । आदि मानव भी स्वरानुभूति से प्रेरित होकर जब कभी सुख अथवा दुख की संवेदना से आंदोलित हुआ होगा, तभी लोकगीतो की स्वरलहरी उसके कठ पर लहरा उठी होगी और पांवों के सहारे उसका बदन थिरकने को मचल पडा होगा। यह लयब्रद्ध स्वरधारा लोकगीत और लयबद्ध थिरकन लोकनृत्य के रूप मे मानी गयी। ये गीत- नृत्य सुख और 'दुख तथा आशा और निराशा दोनो ही समय ले साक्षी है। देवेद्र सत्यार्थी ने लोकगीतों पर विचार करते हुए लिखा है: - "कहा से आते है इतने गीत? स्मरण-विस्मरण की आंख मिचौनी से । कुछ अट्टहास से । कुछ उदास हृदय से । कहा से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं, ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी-पर ये सब हैं खाद । जीवन के सुख, जीवन के दुःख, ये लोकगीत के बीज।

डॉ. श्याम परमार ने लोकगीतों के उद्भभव और विकास पर विचार करते हुए कहा है, "गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक संभावना हमारे पास है, पर उसके अंत की कोई कल्पना नहीं। यह वह धारा है जिसमें अनेक छोटी- मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना दिया है। सदियों के घात प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न पीरीस्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने- बाने बुने हैं। स्त्री-पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इनकी ध्वनि में बालक सोए हैं। जवानों में प्रेम की मस्ती आई है। बूढ़ों ने मन बहलाए हैं। वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है। विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई हैं। विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है। पथिकों ने थकावटें दूर की हैं । किसानों ने अपने बड़े- बड़े खेत जोते हैं। मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मोलियों ने चुटकले छोड़े हैं।"

सच तो यह है कि लोकगीत किसी भी समाज, सभ्यता एव संस्कृति के दर्पण, रक्षक एव पोषक होते हैं। ये गीत लोकजीवन के अथाह समुद्र और लोक धारणाओं के विस्तृत मैदान होते हैं। जहाँ लोकलीला, लोकाचार, लोक व्यवहार एव लोकोपचार के अनेक पक्ष उद्घाटित हुए मिलते हैं। ये गीत लोकमंगल के असंख्य झिलमिलाते तारे हैं। तारिकाओं के समूह हैं। इनमें कितने ही ध्रुवतारे हैं। कितने ही पुच्छल तारे हैं। कितनी ही किरण्यां एव हिरण्यां हैं। जनजीवन की सुखद भावनाओं तथा कमनीय कामनाओं के सहारे इन्हें वाणी का रूप मिलता है। आंगीक क्रिया कलापों के सबल से इनमें रंग निखर आता है और पांवों की थिरकन के सहारे इनमें रूप टपक पड़ता है। ये गीत शाश्वत, सुखद एव अनंत होते हैं।

लोकगीत धरतीपुत्रों के वे स्वर विटप हैं जिनमें परंपरा रूपी बीज हैं। अनुभव का पानी, भावनाओं का खाद और लहराने को स्थिति की पुरवाई है। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' इसी के आगे कहते हैं कि लोकगीतों की हर सीढ़ी पर अनुभव का शहद है। नेह का माधुर्य है। वे संदेश विनिमय के लिए कभी- कभी माध्यम से कमजोर नहीं। डॉ. श्याम परमार ने लोकगीतों की विशेषताओं को यों गिनाया है, लोकगीत निर्वयक्तिक हैं। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है, इसलिए व्यक्तित्व का अभाव और समूह अथवा जातीय विशेषताओं के लक्षण उनमें मिलते हैं। संक्षेपत: -

1. अकृत्रिमता
2. सामूहिक भावभूमि
3. परपरात्मकता तथा मौखिक परंपरा के गुण
4. रूढ़ अतिशयोक्ति

संगीतात्मकता आदि लोकगीतों की विशेषताएं हैं । कुछ अन्य विशेषताएं भी हो सकती।

लोकगीत कई तरह के हैं। डॉ. सत्येद्र ने लोक गीतों का वर्गीकरण इस तरह किया है-

1. जन्म गीत
2. विवाह गीत
3. त्यौहार के गीत, व्रत और देवी - देवतादि के गीत
4. अन्य विविध गीत
5. प्रबंध गीत

लेकिन यह वर्गीकरण अधूरा है क्योंकि लोकगीतों का संस्कार इस वर्गीकरण से इतर भी है। सूर्यकरण पारीक ने इन गीतों को 29 प्रकार का माना है जो वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं माना जा सकता। ऐसा ही वर्गीकरण प. रामनरेश त्रिपाठी का है जिन्होंने 11 तरह से गीतों का विभाजन किया है तथापि गीत बंधनातीत है। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने लोकगीतों को केवल तीन रूपों में बांधने का प्रयास किया है । यथा-

1. अनुरंजनपरक लोकगीत
2. व्यवसायपरक लोकगीत
3. धर्मपरक लोकगीत

इस वर्गीकरण में संस्कार, रसानुभूति वाले, ऋतुओं और व्रतानुष्ठानों तथा विभिन्न जातियों के और विविधानेक क्रियादृष्टि वाले गीत भी आ जाते हैं।

लोकगीतों के वर्गीकरण का एक आधार यह भी हो सकता है-

1. व्यक्तिपरक लोकगीत
2. समाजपरक लोकगीत
3. संस्कारपरक लोकगीत
4. धर्मपरक लोकगीत
5. जीवननिर्माणपरक लोकगीत

लोकगीतों के साथ ही लोकनृत्यों में भी सहज संप्रेषणीयता होती है। सृश्यारंभ से ही मानव अपने आनंद के क्षणों में प्रसन्नता से झूमकर अंग भंगिमाओं में अनायास, अनियोजित प्रस्तुति करता रहा है। यह उसका स्वभाव है और कदाचित यह व्यक्तिगत स्वभाव ही क्रमश: समष्टिगत रूप में परिलक्षित हुआ। धीरे- धीरे विविध आयोजनों के बीच लोकनृत्य के स्वरूप में विकसित होता हुआ विभिन्न धाराओं का सा मेला बना। जहां शास्त्रीय नृत्य में व्याकरण में बन्ध कर कलाकार आनंद की अनुभूति करता है वहीं लोक कलाकार आनद की अनुभूति से

छलकता हुआ लोकनृत्य में निमग्न हो जाता है। डॉ. शकुन्तला बापना ने लोकनृत्यों का वर्गीकरण क्षेत्रीय, जातीय तथा व्यावसायिक लोकनृत्य के रूप में किया है।

लोकगीत और लोकनृत्यों ने अपनी संस्कृति का रंग यदि एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक पहुंचाया है तो वहीं पीढ़ी-दर- पीढ़ी सामाजिक बंधन व अनुशासन के संस्कार भी दिए हैं।

2.3.6 पड़

पड़ कपड़े पर चित्रित एक चित्रकथा होती है। कागज पर काली स्याही से जिस तरह शब्दों के सहारे किसी महाकाव्य अथवा महागाथा का अंकन किया जाता है उसी तरह 'पड़' में किसी बृहदकाय कपड़े पर कोई चित्रकार लोकशैली में काव्यगाथा में वर्णित किसी महानायक की जीवन लीला का चित्रांकन करता है। यह काहा जा सकता है कि समाचारपत्रों में जो महत्व चित्रकथा का है, अथवा दृश्य- श्रव्य माध्यम पर जो प्रभाव एनिमेशन फिल्म का है, वही महत्व लोकजीवन में पड़ का है । यों 'पड़ ' किसी कपड़े के टुकड़े को भी कहा जाता है । 'फड़ूद' भी इसका पर्याय है। अत: पड़ को 'फड़' भी कहा जाता है । पड़ केवल चित्रों का ही पिटारा है। इसमें चित्रों के साथ कथा अथवा गाथा का लेखन तनिक भी नहीं होता। मेवाड़ के शाहपुरा भीलवाड़ा के जोशी छीपा परिवार के चितेरों ने पड़ चित्रांकन का कार्य प्रारम्भ किया। वैसे कपड़ों पर चीतने और लिखाई करने का पारंपरिक रूप मिथिलांचल, बिहार, तंजापुर तथा सौराष्ट्र में भी देखने को मिलता है। भीलवाड़ा के श्रीलाल जोशी तथा शाहपुरा के दुर्गेश जोशी और शांतिलाल जोशी ने पड़ कला के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त किया। पड़ चित्रों को देखकर उसमें निहित कथा को समझा जा सकता है परन्तु उसको बताने और बाँचने की पूरी परंपरा रही है।

पड़ वाचक

राजस्थान में पड़ वाचक को भोपा कहा जाता है। यहां के लोकदेवताओ में पाबूजी और देवनारायण की पड़े ही सर्वाधिक हैं । पड़ के लघुरूप में रामदला एवं कुष्णदला भगवान राम तथा कृष्ण से संबंधित है जो एक प्रकार से पडक्ये ही हैं । व्यवसाय एवं प्रयोग के तौर पर पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, महात्मागांधी आदि की पड़े भी निर्मित हुई हैं किंतु वे सज्जा तक ही सीमित रहीं। पड़ का वाचन करने वाला पडवाचक भोपा कहलाता है यथा पाबूजी की पड़ का वाचक पाबूजी का भोपा, देवनारायण की पड़ का वाचक देवनारायण का भोपा। अधिकांशत: पाबूजी की पड़ राइका तथा देवनारायण की पड़ गूजर जाति के लोग बंचवाते हैं जो इन देवताओं के आस्थावान श्रद्धालू होते हैं। इनका वाचन पुत्र जन्म, विवाह, विशिष्ट उपलब्धि, विशिष्ट कार्य की संपूर्ति अथवा मनौती के पूर्ण होने पर कराया जाता है। पाबूजी की पड़ के साथ भोपा तथा. उसकी पत्नी भोपी होती है जबकि देवनारायण की पड़ अकेला भोपा अथवा उसका एक और सहायक मिलकर बांचते हैं। यह पड़ अपने वाचन में एक लंबी गाथा-गायकी होती है।

यह गायकी एक पूरी कथा शैली है जिसे भोपे अपना विशिष्ट स्वर, वाद्य और नाच का ठुमका देते हैं। यह गायकी लोक देवता पाबूजी तथा देवनारायण के रूप में बड़ी लोकप्रिय है। पाबूजी की पड़ के साथ रावणहत्था नामक वाद्य बजाता है। पाबूजी का भोपा पड़ के सामने नाचता-गाता हुआ पाबूजी की जीवन लीला को विशिष्ट लयकारी देता है। इस भोपे के साथ एक भोपण (स्त्री) होती है जो नाचती हुई भोपे का स्वर झेलती, सहायक होती है ।

पड़ का यह वाचन कथन रात्रि को होता है। इसी प्रकार देवनारायण की जीवन लीला की पड़ का जोशीले ढंग से गायन किया जाता है। देवनारायण का भोपा दूल्हे की- सी विशिष्ट पोशाक धारण कर जंतर नामक वाद्य के साथ इसकी गावणी करता है। पाबूजी से यह गाथा अधिक लंबी, अधिक जोशीली और अधिक वीरत्व जगाने वाली है। इन पड़ो में पहले गायकी के माध्यम से पद्य कथा कही जाती है, फिर गद्य में उसका उलथावा (अनुवाद) किया जाता है ताकि देखने सुनने वाले पूरी कथा को आत्मसात कर, सकें। ये पड़े एक मीटर चौडी तथा 30-40 गज तक लंबी होती हैं। आजकल इनके टुकड़ों का ड्राईंगरूम की सजावट में उपयोग किया जाने लगा है।

2.3.7 कावड़

कावड़ का नाम आते ही श्रवण कुमार का नाम याद आता है परंतु उल्लेख्य कावड का रूप तराजूदार कावड़ से भिन्न एक देवालय जैसा होता है। एक तरह से यह चलता - फिरता चित्रात्मक प्रतिमायुक्त काष्ठ मंदिर है। कावड़ सद्य के आकार प्रकार जैसी होती है और माचीस से लेकर 5-5 फीट तक की ऊंचाई लिए बनाई जाती है। इसमें आठ- दस पाटों का पिटारा होता है। इसके दोनों ओर मुंह बोलते चित्र उकेरे हुए रहते हैं। कावडिया भाट इस कावड़ को अपनी बगल में लिए गांव-गांव घूमता और घर-घर फेरता है, वाचन करता है और आजीविका के लिए पैसा जोड़ता है। प्रारंभ में यह केवल एक पटरी जैसी थी। शोध सर्वेक्षण से पता चला कि गगरार की कुंदणबाई ने सर्वप्रथम भागवत कथा आधारित पटड़ी या पाटकडीं तैयार की थी ताकि वह नित्य दर्शनों में उसका उपयोग कर सके। कालांतर में बस्सी (चित्तौड़गढ़) के जांगिड़ परिवारों ने उसका विकास किया। मारवाड़ की एक भिक्षावृत्ति पर निर्भर जाति ने उसके सहारे उदरपूर्ति प्रारंभ की। कावड़ के पारंपरिक शिल्पियों में मुख्यत: मांगीलाल मिस्री ने भारतीय लोककला मंडल (उदयपुर) में कई प्रकार की कावडें विभिन्न कार्य प्रयोजनार्थ तैयार की। परंपरानुसार कावड़ में रामायण और भागवत लीला चित्रित होती है। कावडिया भाट इस कावड़ का अपने यजमानों के समक्ष वाचन करता है और 'नेग' पाता है।

कावड़ का वाचन

लाल कपड़े में लिपटी कावड़ को पहले कावडिया भाट खोलता है और मयूर पख का झाला देता हुआ उसका वाचन प्रारंभ करता है। सर्वप्रथम वह भगवान राम के नाम का 'जयकार लगाता है। इसमें रामजीवन से संबंधित चित्रों का बाहुल्य होता है और अंत में भी राग सीता लक्ष्मण के दर्शन कराए जाते हैं। यही कारण है कि यह कावड़ रामजी की कावड़ के नाम से भी जानी जाती है। कावडिया भाट एक- एक चित्र का परिचय विशिष्ट किंतु अति संक्षिप्त गायकी के साथ कराता है। यह गायकी गद्य पद्य का मिश्रित रूप लिए होती है। विभिन्न तीर्थों तथा धर्मस्थलों का पुण्य घर बैठे ही पा लेते हैं। कावड कथा के कुछ बोल इस प्रकार है-

1. धन्ना भगत री खेती / वाचे तूंबा, निपजे मोती।
2. सेन भगत जी नाई / हजामत भगवान की बणाई।
3. गिया तो बद्धरी ने काया नर सहरी । नी गया बद्धरी /रेणा दलद्दरी।

4. राम लक्ष्मण री जोड़ी / छिण में लका तोडी।

5. सबरी भीलण बोर झाड़े / रामजी रूच-रूच ने खावे।

6. कुंभकरण धरम कर पछतायो / हाथ मिनख रा ने मूंडो- पूंछ गधा रो पायो.....।

बदलते जीवन के परिवेश में कावड़ को लेकर कई प्रयोग हुए हैं। मांगीलाल मिस्री ने पारंपरिक कावड़ों के अतिरिक्त महात्मागांधी, महावीरस्वामी, मीराबाई, ईसा मसीह, वीरवर दुर्गादास राठौड़ आदि की कावडें बनाकर देश- विदेश के कलाप्रेमीयों का ध्यान आकृष्ट किया है। दरअसल लोक में प्रचलित सारे माध्यम लोककला शिल्पों पर ही आधारित हैं। परस्पर उनका तन प्राण का संबंध है। माध्यम कोई भी हो पहले वह शिल्प से उपजता है और बाद में उसमें प्रेरणा का स्रोत ढूँढ़ा जाता है। शिल्प के साथ कथा- सूत्र जुड़कर एक माध्यम के विकास का सूत्रपात होता है।

2.4 भारत की लोककथाएं

2.4.1 परिचय और परिभाषा

सामान्य रूप से परंपरा से चली आ रही कथा, कहानियां और वार्ता लोककथा के अंतर्गत आती हैं। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मानव की कथा सुनने की प्रवृत्ति आदि काल से ही रही है, इसीलिएं लोककथाएं भी प्राचीन काल से ही मनुष्य के जीवन के साथ-साथ रही हैं। लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्येद्र ने ठीक ही लिखा है कि धर्म गाथाओं और लोक कथाओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनका मूल बहुत प्राचीन है। आदि मानव ने प्रकृति के विभिन्न उपादानों को देखा और उनमें मानवीय क्रिया व्यापारों की समानता का दर्शन किया। इस तरह के ज्ञान की अनुभूति करना भी लोककथाओं के जन्म की पहली सीढ़ी मानी गई है।

हमारे वैदिक, सूत्र, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद आदि ग्रंथों से लेकर पौराणिक साहित्य में लोककथाओं का विशिष्ट लिखित रूप मिलता है। इसका यही अर्थ है कि वे कथाएं प्रारभ में मौखिक रूप में अस्तित्व में आई। यह भी कहा जाता है कि लोककथाओं का जन्म उस समय हुआ जब कि मनुष्य कल्पना, कथा और इतिहास में अंतर नहीं कर सकता था। स्मृति पटल पर जीवित रखने योग्य घटनाएं जनजीवन में व्याप्त होकर लोककथाओं अथवा गीतों के रूप में अमर होती थी। उन्हें चाहे कल्पना कहिए, कथा कहकर संबोधित करिए अथवा इतिहास के रूप में रखिए। बेनफे, मेक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भारत को लोककथा अथवा मौखिक कथा परंपरा का प्रथम स्थान माना लेकिन यह भी सत्य है कि कहानी का मौखिक रूप सृष्टि के समारंभ से ही प्रत्येक देश में पाया जाता है। डॉ. शंकरदयाल यादव के मतानुसार ये परंपरित कहानियां सब देशों में घास की तरह अपने आप पैदा हुई। वर्ष के बारहों माह में विविध त्यौहार-उत्सवों - अनुष्ठानों पर महिलाएं जो व्रत एव अनुष्ठान करती हैं, दीवाल पर थापाकन करती हैं तब जो कहानियां कहती हैं वे भी संख्यातीत हैं। होली के बाद दस दिन तक दशामाता के व्रतों में प्रतिदिन पांच - दस कहानियां कही जाती हैं। राजस्थान की ऐसी एक सौ से अधिक कहानियां एकत्र कर डॉ. कविता मेहता ने शोध प्रबंध लिखा। इसी तरह कार्तिक के पूरे महीने में कातिक

नहाने वाली महिलाएं प्रतिदिन सुबह कई तरह की कहानियां सुनती सुनाती हैं। नानी-दादी की कहानियों की परंपरा का तो कहना ही क्या! राजघरानों में कथा कहानियां कहने वाले कथकंड़ों की भी हमारे यहां बड़ी समद्ध परंपरा रही है।

2.4.2 लोककथाओं की विशेषताएं

लोककथाओं की विशेषताएं भी कम नहीं हैं । डी. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक कथाओं की आठ विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है-

1. प्रेम का अभिन्न पुट
2. अश्लील श्रृंगार का अभाव
3. मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरंतर साहचर्य
4. मंगल कामना की भावना
5. संयोग में कथाओं का अंत
6. रहस्य-रोमांच और अलौकिकता की प्रधानता
7. उत्सुकता की भावना
8. वर्णन की स्वाभाविकता

इन्हीं विशेषताओं के आधार पर विद्वानों ने लोककथा और शिष्ट कथा में अंतर. किया है । इन कथाओं के कई प्रकार हैं परंतु यह सत्य है कि कथाकारों, कथकंड़ों बातपोशो ने कभी नाना- नानी के रूप में तो कभी दादा- दादी के रूप में कथन- श्रवण परंपरा का विकास किया । सुनने की परंपरा उपनिषद परंपरा का स्मरण बनी और हमारी जीवन संस्कृति में एक सुनहरे अध्याय की शुरुआत हुई । वस्तुत: लोककथाओं का आज भी हर खास आम पर जादू चढ़कर बोलता है क्योंकि लोककथाओं में जीवन का सुख- दु:ख, रीतिरिवाज, आस्थाएं, विश्वास और परंपराए अभिव्यक्त होती है । ये कथाएं पंचायती फैसलों के लिए जंजीर का भी करती हैं और इतिहास को उसकी शुष्कता से बचाती हैं । कुल, मिलाकर इनमें जीरत्रन का एक ऐसा अनूठा रस भरा है जो कभी शुष्क नहीं हो पायेगा और न जिसको मिठास ही कम अथवा कमजोर कर सकेगा ।

बोध प्रश्न-2

1. लोककथा से आपका क्या तात्पर्य हैं? (100 शब्दों में)
2. आप श्रेष्ठ लोककथा किसको कहेंगे?
3. पड़ वाचक किसे कहते हैं?
4. कावड़ से आप क्या समझते हें?
5. लोकगीत संस्कृति के दर्पण कैसे होते हें?

2.5 भारत की लोककलाएं

2.5.1 परंपरा और पहचान

संस्कृत की उक्ति 'कलाति ददाति कला' के अनुसार सौंदर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है । इसे आनंद उत्पादिका भी कहा गया है- 'आनंद लाति इति कला' । कहा जाता है कि मानव हृदय में उठते हुए भावों को सहज एवं सरल अभिव्यक्ति

देने का माध्यम कला है । डा भोलानाथ तिवारी ने कला को व्यापक रूप मे देखते हुए लिखा है कि कला मानव के कर्तव्य शक्ति का किसी मानसिक, शारीरिक तथा उपयोगी या आनंददायी या दोनो से युक्त वस्तु के निर्माण के लिए किया कौशलयुक्त प्रयोग है । इस तरह कला का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उसके असंख्य या अनत भेद या रूप हो सकते है ।

कला पर इस चर्चा के बाद, लोककला के विषय में कहा जा सकता है कि लोककला का अर्थ लोकमन या जनजीवन की सहज, सरल एव अविराम अभिठंयक्ति से है। डा. श्याम परमार के अनुसार लोककलाओं से तात्पर्य उन प्रदर्शनकारी लोकधर्मी कलाओं से है जो देहातों, कस्बों और आदिवासी इलाकों में प्रचलित हैं और आमतौर पर जो सामाजिक उत्सवों, रीतिरिवाजों और जनपदीय सौंदर्य बोध से संबंधित हैं । दूसरे शब्दों में जन साधारण ने परपरागत रीति से स्थानीय सामग्री के द्वारा देशी औजारों की सहायता से अपने खुद के हाथों से जो सुंदर एवं सौंदयपूर्ण वस्तुएं तथा सामग्रियां लोकोपयोग के लिए बनाई हैं, उन सबका समावेश लोककलाओं में होता हैं । इसकी उत्पत्ति मनुष्य की जन्मजात कलात्मक सौंदर्यवृत्ति से हुई । यह वह अवस्था थी जब मानव खेती करने लगा था । इसलिए कहा जाता है कि लोककला जनसामान्य विशेषत: ग्रामीणजनों की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है ।

2.5.2 लोककला की विशेषताएं

लोककला में यद्यपि स्थानीय एवं जातिगत विशेषताएं लक्षित होती है परंतु सामान्य रूप से उसमें जनसमुदाय की स्वीकृति और भागीदारी का लगाव होता है । डा. गिरिराज किशोर अग्रवाल के अनुसार लोककला की उत्पत्ति धार्मिक भावनाओं, अंधविश्वासों, भय निवारण, अलंकरण प्रवृत्ति तथा जातिगत भावनाओं से हुई.. जैसे- जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया, लोककलाएं विकसित होती गई । ये विकसित आकृतियां यद्यपि प्रतीकात्मक होती हैं तथापि इनमें अधिक अलंकारिकता आ गई है ।

लोककला की प्रधान विशेषताएं ये हैं -

1. लोककला का निर्माण लोकोपयोग के लिए होता है। सरलता, सादगी इसके प्राण हैं?
2. लोककला की अभिव्यक्ति सरल होती है। यह सरलता ही इसकी शक्ति और गतिशीलता का कारण है।
3. इसमें हृदय तत्व की प्रधानता होती है और भावों की गहराई की भी।
4. लोककला में स्थानीयता का पूरा प्रभाव होता है।
5. इसमें जातिगत विशेषताएं होती है।
6. लोककला धीरे- धीरे विकसित होती है।
7. लोककला का प्रशिक्षण प्राय: परंपरागत अथवा पुश्तैनी होता है।
8. लोककला सहकारी कला होती है। कई जनों का विविध रूप में उसके निर्माण में सहयोग होता है।
9. लोककला की तकनीक अत्यंत सरल होती है और इसका शिक्षण-प्रशिक्षण मुख्यत: अनुकरण प्रधान होता है।
10. लोककला धर्म तथा अलौकिक मान्यताओं से बहुत प्रभावित होती है।

प्रारंभ में हथियार निर्माण, वस्त्राभूषण निर्माण से लेकर भव्य अट्टालिकाओं और आकाशीय विमानों तक की उड़ान लोककलाओं में निहित सांस्कृतिक सोपानों तथा जीवन सरोकारों के आधार पर ही संभव हो सकी है। यही कारण है कि लोककलाए आज भी हमारे समाज में संस्कारों की तरह सहगामी हैं और हमेशा रहेंगी।

2.6 सारांश

लोकजीवन मे संचार के अपने सुनियोजित माध्यम रहे है। लोकजीवनी मान्यताओं और आस्थाऔ के ईदगिर्द भावनाऔ या संदेशों के संप्रेषण के जो तरीके हैं, बड़े प्रभावी है। इनको ग्रामीण या लोकमाध्यम अथवा पारंपरिक मीडिया कहा जाता हैं। कठपुतली, लोकनाट्य,व लोकगाथा, पड़, कावड़ आदि ने माध्यमों के रूप मे प्राचीनकाल से ही लोकांचालों से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। आधुनिक तकनीक के दौर मे भी ये माध्यम अपना प्रभाव ओर अपना वजूद कायम रखे हैं।

इन माध्यमों में दो तरह के माध्यम हैं- एक मौखिक या श्रव्य माध्यम और दूसरा दृश्य माध्यम। लोककथा बातपोशी व लोकगीत श्रव्य हैं जबकि कठपुतली लोकनाट्य लोकनृत्य पड़ कावड आदि दृश्य भी हैं और श्रव्य भी। ये अपने लोकमंच पर अपनी पूरी सत्ता के साथ काबिज हैं जहां लोक समाज है और परंपराओं में फलता- फूलता लोकाचारों से परिपूर्ण जीवनानंद।

2.7 शब्दावली लोक- सामान्य

लोक - अर्थ में शिक्षित समुदाय से भिन्न मानव समाज को 'लोक' की संज्ञा दी जाती है। इसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं होकर परंपरागत श्रुत ज्ञान है।

रेड या हेला - आवाज देना

पड़ - कपड़े का टुकड़ा

लिखाई - चित्रांकन करना

भोपा - वह व्यक्ति जो पड़ का वाचन करता है। उसकी पत्नी भोपन कहलाती है।

रावणहत्था - एक वाद्य जिसमें एक ओर चर्म मढ़ी नारियल की कांचली व दूसरे सिरे से चर्म तक तार कसे होते हैं। यह गज से बजता है।

जंतर - वीणा की तरह का तार वाद्य जो अंगूठे से आघात कर खड़े- खड़े बजाया जाता है। यह धरती का वाद्य नहीं होकर देवताओं द्वारा लाया गया कहा जाता है जो बजने बजाने में विचित्र वातावरण की सृष्टि करता है। लोकजीवन में प्रचलित 'सौ मंतर रै एक जंतर ' कहावत से इसका महत्व आका जा सकता है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. लोकनाट्य-परंपरा और प्रवृत्तियां - डी. महेंद्र भानावत
2. राजस्थान का लोकसंगीत - देवीलाल सामर
3. मालवी लोकसाहित्य - डी. श्याम परमार
4. विंध्य क्षेत्र की लोकचित्र कला - डी. नंदिता शर्मा

5. कावड़ - डी. महेंद्र भानावत
6. मेवाड़ प्रदेश का पीड़ साहित्य - डी. श्रीकृष्ण ' जुगनू
7. लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाएं - देवीलाल सामर
8. पारंपरिक भारतीय रंगमंच - कपिला वात्सायन
9. पड़ कावड़ कलंगी - डी. महेंद्र भानावत
10. लोकसाहित्य, सिद्धांत और प्रयोग - डी. श्रीराम शर्मा
11. कठपुतली-परंपरा और प्रयोग - देवीलाल सामर
12. लोकरंग - डा. महेंद्र भानावत

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. कठपुतली खेल का आंखों देखा कमाल लिखिए।
2. पाबूजी की पड़ का महत्व प्रतिपादित करिए ।
3. आधुनिक संदर्भ में कावड़ की उपयोगिता को आप किन रूपों में रेखांकित करते हैं?
4. बदलती हुई जीवनधारा में लोककलाओं की उपयोगिता आप किस भांति महसूस करते हैं?
5. नानी द्वारा सुनी हुई ऐसी कहानी लिखिए जो अनुरंजन के साथ- साथ शिक्षाप्रद भी हो।
6. लोकमाध्यम पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
7. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए-
   अ. लोकनाट्य
   ब. लोकगीत
   स. कावड़
   द. लोक कथाएं

इकाई 3 भारत के प्रमुख लोकमाध्यम इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रमुख लोक माध्यम

- 3.2.1 लोककथा
- 3.2.2 लोकनाट्य
- 3.2.3 लोकनृत्य
- 3.2.4 लोकगीत

3.3 लोकमाध्यमों का भूत और वर्तमान स्वरूप

3.4 लोकमाध्यमों का ग्रामीण जनसंचार में योगदान

3.5 सारांश

3.6 उपयोगी पुस्तकें

3.7 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य भारत के मुख्य-मुख्य लोकमाध्यमों की स्थिति, क्षेत्र, उनकी संवाहक कलाधर्मी जातियों और प्रदर्शन-प्रस्तुतियों से परिचित कराना है। साथ ही माध्यमों के भूत और वर्तमान स्वरूप तथा ग्रामीण संचार में योगदान की जानकारी कराना भी है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद

- आप भारत के प्रमुख लोकमाध्यमों का नाम व उनका विधावार ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रदर्शनधर्मी जातियों और उनकी कला परंपराओं से साक्षात हो सकेंगे।
- प्रमुख लोकमाध्यमों के कल और आज के स्वरूप से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- इन माध्यमों के ग्रामीण जनसंचार के क्षेत्र में योगदान के बारे में जान सकेंगे।
- लोकमाध्यमों के महत्व रख उसकी उपयोगिता को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग जनसंचार माध्यमों की अतियात्रिकता के युग के रूप में सामने है और जनसंचार के नित नए स्वरूप सामने आते जा रहे हैं। इन संचार माध्यमों का असर यह है कि लोगों का पारस्परिक संवाद सीमित होता जा रहा है। सामाजिकता स्वार्थ केंद्रित हो रही है और सबके आत्मकेंद्र में अर्थ प्रधान होता जा रहा है। इसके विपरीत हमारे जो पारंपरिक ग्रामीण माध्यम रहे हैं, वे सामाजिकता के विस्तार का पूरा वाड्मय लिए हुए हैं। ये माध्यम सामूहिक संपूर्णता लिए हैं तथा व्यक्ति को गौण और समूह को वरीयता देते हैं। इन माध्यमों ने परिवार के बीच ही नहीं, समाज और समाज के बीच संबंधों का तथा संवाद का सिलसिला कायम किया और विभिन्न चीजों, विचारों, मान्यताओं और मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचालित किया ।

ये पारस्परिक माध्यम संचयी माने जाते हैं । दूसरे शब्दों में, ये माध्यम सैकड़ों वर्षो के अनुभवों को अपने में संचित एवं समाहित किए अपने स्वरूप को सुविधानुसार विकसित, वर्धित करते रहे हैं । ये माध्यम हमारी सांस्कृतिक धरोहर हो । आज जनसंचार के अतियांत्रीक युग में ग्रामीण युग में ग्रामीण या लोकमाध्यमों को भले ही केवल जंगली, निहायत नासमझ या पिछड़े लोगों के लोकानुरंजन के अलावा कुछ नहीं माना जाता है अथवा बदले परिवेश में इन माध्यमों को फैशन की तरह देख लेने की मानसिकता बढ़ चली हो, परंतु ग्रामीण माध्यम अपने आधार में नई परंपराओं के जन्मदाता और नए माध्यमों के बीज भी रहे हैं । लोकमाध्यमों के अध्ययन व परीक्षण से यह बात भलीभांति उजागर हो जाती है कि ग्रामीण संचार माध्यमों के पीछे समाज की पूरी संस्कृति के विकास की कहानी छिपी हुई है । डी. श्रीकृष्ण 'जुगनू' के अनुसार ये ही वे माध्यम हैं जिनसे ग्रामीण कथा कोविदों की कल्पनाएं और धर्म अध्यात्म से ओतप्रोत मान्यताएं तथा विश्वास लोकमानस में रचे बसे एवं फले फूले । यदि लोककथाओं की परंपरा विकसित न होती तो कई ऐतिहासिक, धार्मिक और प्रेम प्रसंग अतीत के गर्त में दफन हो जाते हैं । यदि लोकनाट्यों की आहलाद एव. अनुरंजनकारी परंपरा न होती तो विभिन्न भगवत्लीलाओं की विश्व व्याप्ति न होती । यदि लोकनृत्यों व गीतों की उल्लास और उमंग से भरपूर रसदायिनी परंपरा पोषित न होती तो जीवन का माधुर्य रस विहीन गन्ने की तरह नीरस हो जाता ।

3.2 प्रमुख लोकमाध्यम

3.2.1 लोककथा

उत्स व परिभाषा : लोक में कहानी कहने की परंपरा बहुत पुरानी है । आदिम युग से ही मानव ने अपनी अनुभूतियों को कथा के रूप में कहा। उसने अपने अस्पष्ट जीवन दर्शन को भी लोककथाओं के रूप में भावी पीढ़ी के सामने रखा। श्रुत परंपरा संभवत: लोककथाओं से ही शुरू हुई । यह कथाभिव्यक्ति दो रूपों में अदभूत हुई मिलती है-

1. पौराणिक कथा के रूप में और
2. लोककथा के रूप में

पौराणिक कथाएं धर्मवृत्त, उपवास, उद्यापन आदि धार्मिक व्रतानुष्ठानों से संबंधित रही हैं जो अवसर विशेष पर कही- सुनी जाती हैं । कुछ लोग लोककथाओं का वादन के साथ काव्यमय गायन कथन करते हैं' । लोककथा में लोकजीवन के सु ख- दुख, रीति- रिवाज, आस्थाएं' विश्वास परंपराएं अभिव्यक्त होती हैं।

हिंदी साहित्य कोष (प्रथम भाग) में लोककथाओं के विषय में लिखा है- "लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आने वाली मूलत: मौखिक रूप से प्रचलित कहानियां लोककथाएं कहलाती हैं। 'डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता है जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमश: एक पीढ़ी से

दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहे हैं। डॉ. सत्येंद्र ने लोककथा साहित्य को आठ भागों में विभक्त किया है-

1. लोक कहानी
2. धर्म महात्म्य कथा
3. अवदान (लीजेंड्स)
4. वीर गाथाएं (बेलेड्स)
5. संत कशा
6. पुराण कथा (माथोलोजिकल)
7. संस्कार वर्णन संबंधी कथाएं तथा
8. विविध कथाएं

पारंपरिक कथाकार : हमारे यहां घर से लेकर बाहर तक, पलने से लेकर श्मशान-शयन तक कथा- कथन की परंपरा रही है। कथा कथन के माध्यम से पीढ़ियां (वंशावली) सुनाने की परंपरा रही है। यहाँ राणीमंगा, राव, भाट, चारण आदि बंदीजनों ने वंशावली वाचन को लोकमाध्यम अपनाकर अपनी आजीविका का आधार बनाया। विभिन्न सामाजिक', ऐतिहासिक एवं प्रेम कथाओं के कथन की पूरी की पूरी बात-पोशी की परंपरा राजस्थान में रही है । कथकंडों, बातपोशों ने अपनी जुबान से अपने जजमानों, राजा- महाराजाओं का अनुरंजन किया। लोककथा वह श्रव्य माध्यम है जिसने मनुष्य की जिज्ञासुवृत्ति को सदा ऊर्ध्वगामी आयाम दिए। डॉ. कविता मेहता ने राजस्थान में रावल, मोतीसर, भाट, बडूवा, ढाढी, नगारची, सरगरा आदि द्वारा अपने जजमानों को कहानियों द्वारा रिझाकर उनसे नेगचार प्राप्त करने की परंपरा पर विचार किया है और कहा है कि कौतुहल को बढ़ाने वाली ये कहानियां इतनी सजीव और जानदार होती हैं कि सुनने वाला घंटों तक सुनता ही रहता है। श्रीमती मेहता ने कथाकथन के चार माध्यमों का जिक्र किया है-

1. कथा कथन
2. कथा वाचन
3. कथा गायन
4. कथा कीर्तन

इन्हीं माध्यमों के तहत (क) व्रत कथाएं, बच्चों व नानी दादी की कथाएं, (ख) राव भाटों, बंडवों तथा पंडितों की कथाएं, (ग) भारत, कड़े, डंडेर, डिवाले, पड़, छोए, पवाड़े और फली कथाएं कही और सुनी जाती हैं। कहानी को बात या वार्ता भी कहा जाता है । आज यद्यपि बातपोश या कथाकार इनेगिने ही रहे हैं। आधुनिकता ने शहरों में तो इस माध्यम को नष्ट कर दिया, लेकिन देहात में कहीं- कहीं यह धारा आज भी प्रवाहित है जहां कथा के साथ हेले और द्वारे लगते हैं। यथा बालकों में प्रचलित हेला-

काणी केरे कागलो
हुंकारो देरे बागलो
काली घोड़ी काकाजी री
फूल बछेरी मामाजी री
थीं थाणे भाईजी रा,
म्हीं म्हाणे भाईजी रा।

अर्थात् कौआ कहानी कहता है। चिमगादड़ हुनकारा बरता है। काकाजी की घोड़ी काली है। लाडली बछेरी मामाजी की है। तुम तुम्हारे पिताजी के और हम हमारे पिताजी के हैं।

और कहानी समाप्ति पर

म्हारी काणी मोटी व्हिजो
सामले घरै छोरो ठिहजो
चार पताया म्हाने दीजो
चार पताया थाई लीजो।

अर्थात् हमारी कहानी बढ़ती रहे । सामने वाले घर में पुत्र जन्म हो । चार पतासी हमें देना चार पतासी तुम भी लेना ।

बातपोशी यानी कथा कहने वाले को कथारची और हूंकार देने वाले हूंकारची कहते हैं । हुंकारे के अभाव में कहानी कहने का मजा ही जाता रहता है। कथा को अधिकाधिक रसवान, प्राणवान एवं अनुरंजनपूर्ण बनाने के लिए हूंकारची का बड़ा महत्व माना गया है। कहा गया है- 'बात में हुंकारो, फौज में नगाड़ो' अर्थात् जो महत्व फौज में लड़ाई का है वही बात में द्वारे का है। कहानी कहते बड़ा वक्त लगता है कारण कि लंबी- लंबी कहानियां चलतो रहती है अत: हूंकारची बीच- बीच में अपनी विशिष्ट अदाओं से द्वारे द्वारा कहानी के रंग को से किए रहता है। इसलिए कहा भी गया- "बात कहता बार लागै, हुंकारे बात मीठी लागै

लोककथाओं से भिन्न लोकगाथाएं होती हैं जिनका कलेवर गीतबद्ध आख्यान लिए है। डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा ने लोकगाथा को लोक प्रबंधकाव्य कहते हुए उसमें निम्नलिखित पांच तत्व बताए हैं-

1. चरित्र नायक की संपूर्ण जीवन कथा
2. गेयता
3. लोक आदर्श का निरूपण
4. लोक मानसीय प्रवृत्तियां
5. स्वाभाविक प्रवाह
6.

लोकगाथा का एक सशक्त प्रकार का पवाड़ा है । डी. उषा कस्तुरिया ने इन पर विशद अध्ययन करते हुए लिखा है कि पवाड़े लोकादर्शो का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्रों के, लोक द्वारा निर्मित गेय आख्यान हैं जिन्हें परंपरा से ताजगी मिलती है तथा जो जातीय संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करते हैं ।

बोध प्रश्न- 12

1. बालकों में प्रचलित कोई ऐसी लघु लोककथा लिखिए जो मन बहलाव के साथ- साथ शिक्षाप्रद भी हो ।
2. पर्यावरण बोध से संबंधित किसी लोककथा का महत्व प्रतिपादित कीजिए ।
3. पारंपरिक कथाकार से आप क्या समझते हैं?
4. लोककथा किसे कहते हैं?

3.2.2 लोकनाट्य

उत्स व परिभाषा - लोकमाध्यमों में परंपराशील नाट्य लोकानुरंजन के सशक्त माध्यम रहे हैं । डॉ. श्याम परमार ने लोकनाट्य की परिभाषा इस प्रकार दी है- "लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने - अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।"

लोकनाट्य की जो लोकधारणाए हैं उनके अनुसार यह आनंद एवं उल्लास के अवसरों पर सामूहिक अभिव्यक्ति का सहज अनुकरण होता हैं । ये नाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं से निर्मित होते हैं । लोक प्रचलित परपरागत रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों, कथा-आख्यानों तथा वार्ता- विश्वासों की सफलता इन नाट्यों की मूल पीठिका होती है । वस्तुत: लोकनाट्य लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप है जो अपने-अपने क्षेत्र के लोकमानस को आल्हादित एवं अनुप्रणाणित करता है ।

लोकनाट्य अपने विधि रूपों में वैचित्र लिए होता है । कुछ केवल किसी जाति विशेष की धरोहर होते हैं तो कुछ किसी समूह विशेष तक प्रचारित हुए होते हैं । कुछ गांव की पूरी बस्ती की संपदा होते हैं तो कुछ उसके आसपास के क्षेत्र को भी प्रभावित करते हैं । ये वे माध्यम हैं जो हर क्षेत्र की विशिष्ट पहचान लिए होते हैं और अपने कथ्य में अपनी जनपदीय संस्कृति, रूढ़ियां, विश्वास मान्यताएं व धारणाएं लिए. अपने सांगोपांग स्वरूप में जनसमूह को खासा अनुरंजन और शिक्षण देते हैं । लोकजीवन के सहज संस्कार लोकनाट्यों के सहज स्रोत होते हैं जिनमें नृत्य, गीत और अभिनय का सुखद संगम होता है ।

वर्गीकरण एवं विभिन्न क्षेत्रों के लोकनाट्य - लोकनाटयो के कई आधार हो सकते है । इनमें से मुख्य आधार बोली और भाषा, भौगोलिक स्थिति, नाट्या तत्व, पर्व-उत्सव,रंग शैली शिल्प प्रक्रिया विषयक है। डॉ श्याम पर्म ने लोकनाट्य का वर्गिकरण

1. सामयिक लघु प्रहसन तथा
2. मध्यरात्रि में प्रारंभ होकर सुबह तक अभिनय गीति नाट्य

के आधार पर किया है किंतु यह वर्गीकरण देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित लोकनाट्यों के लिए प्रासंगिक हो सकता है परंतु राजस्थान के संदर्भ में ठीक नहीं बैठता । मूल रूप से राजस्थान में लोकनाट्यों के तीन रूप प्रचलित हैं जो इस प्रकार हैं-

1. ख्याल- राजस्थान में लोकनाट्यों को प्रमुखत: ख्याल नाम से ही जाना जाता है । यहाँ के ख्यालों में माच के ख्याल, तुर्रा कलंगी के ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी के ख्याल, नौटंकी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, अलीबक्षी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, रम्मतें, जयपुरी ख्याल, कठपुतली ख्याल, हाथरसी ख्याल, गंधर्वों के ख्याल, नणौरी के ख्याल, कड़ा ख्याल, अभिनय प्रधान ख्याल, कथावाचन प्रमुख ख्याल, दंगली ख्याल, झाडशाही ख्याल बड़े चर्चित रहे हैं ।

ख्याल के ये विभिन्न रूप स्थानीय विशेषताओं, प्रदर्शन या प्रस्तुतिधर्मी विशिष्टताओ को लिए होते हैं, इसलिए पहचान के लिए उनके नाम- संबोधन प्रथक- पृथक होते हैं। इनका अध्ययन करते समय इनके मंच, वाद्य, कथा वाचन, अभिनय, क्षेत्र, लेखक, शैली, रंगत, छाप, चाल, बणगट (छंद-योजना एवं तंत्र) आदि विशिष्टताओं पर भी विचार किया जाना जरूरी है । प्राय: ख्याल धार्मिक, सामाजिक एवं लौकिक कथा-प्रसंगों एवं घटनाओं से संबंधित होते हैं । ख्याल के संदर्भ में आप इकाई 2 में विस्तार से जान चुके हैं ।

2. स्वांग- अपने में किसी दूसरे के रूप का प्रतिरूप धारण कर उसका प्रदर्शन करना ही स्वांग कहलाता है । यह एक प्रकार से असल का नकल रूप है । स्वांग संबंधी मुहावरों में स्वांग लाना, स्वाग करना, स्वांग बनाना जैसे मुहावरे बहु प्रचलित है । ख्यालों की तरह हमारे यहां

स्वांगों के भी कई रूप प्रचलित हैं । ये स्वांग परिवार से लेकर सार्वजनिक स्थानों तक अभिनीत किए जाते हैं । मूलत: अनुरंजन ही इनके आयोजन- अभिनय का उद्देश्य होता है । स्वांगों में स्त्रियों और पुरुषों के पृथक-पृथक स्वांग देखने को मिलते हैं । ख्याल- झामटडे नाम के स्वांग विवाह के अवसर पर स्त्रीयां प्रस्तुत करती है । टूंटिया-टूंटकी का स्वांग भी इसी अवसर पर किया जाता है । ये वैवाहिक प्रहसन हैं । इनको उत्तरप्रदेश के अवध व अन्य अंचल में 'नकटा नाच' और हीरयाणा में 'खोइया ' अथवा ' खोड्या' कहा जाता है । बरात जब चली जाती है तब पीछे स्त्रियां मिलकर नकली वर-वधू का टूंटिया निकालती हैं । इससे पूर्व रात्रि महिलाएं मनोविनोद से परिपूर्ण विविध रूपा नकल-प्रहसनपरक झामटडे प्रदर्शित करती है और विभिन्न वर्जनाओं की सीमा लांघकर हंसी-मसखरी से लोटपोट रहती हैं । पुरुष अथवा समझदार बालक इन्हें देखने से वंचित रहता है । अन्य स्वतों में विभिन्न पर्वोत्सवों पर निकाले जाने वाले स्वांग, यथा-उदयपुर में जमराबीज का स्वाग, डाकी की असवारी, कोटा क्षेत्र का सलोद में होली पर न्हाण, ब्यावर, नाथद्वारा, चारभुजा आदि में बादशाह की सवारी, मांडल में देवी के वाहन नारों का स्वांग, बहुरूपिया के रूप में सरूप आदि हैं ।

3. लीलाएं - लोकनाट्यों में लीलाओं का विकास धार्मिक आंदोलनों की प्रेरणा से हुआ माना जाता है, परंतु ऐसा नहीं है । पूर्व काल से ही भगवत्र लीलाओं का मंचन होता रहा है । पतंजलि ने ग्रंथिकों और शोभिकों के अभिनय में इस बात का संकेत दिया है । ग्रंथिकों के दो दलों में कंस और श्रीकृष्ण का अभिनय किया जाता है । हमारी दृष्टि में अवतारों के चरित्र का अभिनय दिखाने, उनका यशगान, गुणगान करने तथा उन्हें रिझाने के लिए उनका जो स्वरूप धारण किया जाता है उसका प्रदर्शन ही लीला है । इस दृष्टि से राजस्थान की मुख्य लीलाएं हैं-

1. रामलीला	2. रासलीला	3. सनकादिको ही लीला
4. रावलौ की रामत	5. समया	6. रासधारी
7. गरासियों की गौरलीला	8. गवरी	9. रासमंडल

रामलीला के गायन की परंपरा रामायण काल में जीवंत थी । लवकुश ने इस लीला का गायन किया था । भरताचार्य ने नाट्यशास्त्र में नाट्य परंपरा पर विस्तार से चर्चा की है जिसका आधार लोकाभिरुचि रहा है । ऋग्वेद में समन नामक जिस स्थान का वर्णन है, वह प्रदर्शन स्थल का परिचायक है । वैसे भी नाट्यालीला को हमारे यहां पांचवा वेद कहा गया है । मनोरंजन के साथ लयात्मक रूप से किसी संदेश का संप्रेषण इन लीलाओं के माध्यम से किया जाता रहा है ।

राजस्थान में रामलीला की कई मंडलियां हैं जिनके प्रदर्शनों पर आंचलिकता का प्रभाव पड़ता है । बिसाऊ की रामलीला के प्रदर्शनकर्त्ता मूकाभिनय के लिए जाने जाते हैं । इसमें राम आदि चारों भाई तथा सीता के अलावा सभी पात्र मुखौटा लगाते हैं । यह रामलीला बच्चों द्वारा प्रारंभ हुई । पांटुदा की रामलीला पर हाड़ौती का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है । भरतपुर जिले के जुरहरा गांव की रामलीला सवारी प्रधान है । अशोक वाटिका, लंकादहन, रावण वध आदि सबके जुदा-जुदा स्थान हैं । पूरा गाँव ही रामलीला का मंच और वहां के निवासी दर्शक होते हैं ।

राजस्थान में रासलीला दो रूपों में विकसित हुई मंदिरो में अभिनीत रासलीला और लोकजीवन में प्रदर्शित रासलीला के भिन्न- भिन्न रूप हैं । समया में रामजीवन के महत्वपूर्ण समयों का अभिनय दिखाया जाता है जबकि चित्तौड़ जिले के घोसुंडा की सनकादिकों की लीला में सनक सनन्दन सनातन तथा सनत्कुमार के स्वरूप देखने भारी जनसमूह उमड़ता है । रासधारी मेवाड़ की प्रसिद्ध रही जिसमें राम के वन जीवन की करुणापूर्ण झांकी दर्शित होती है । आबू के महुवाजी के पास वैसाख शुक्ला चतुर्थी को गरासयो की गौर (गणगौर) लील का बड़ा प्रसिद्ध मेला लगता है । आदिवासी अंचल वागड़ में मावजी की स्मृति में साद लोगों को रासमंडल बड़ा जनप्रिय है।

बोध प्रश्न-2

1. अपने अंचल में प्रचलित लोकनाट्य की किसी सशक्त विधा का महत्व बताइए ।
2. आपकी दृष्टि में लोकनाट्यों के समक्ष आ रही कौन- कौन सी चुनौतियां हैं?
3. स्वांग से आप क्या समझते हैं?
4. राजस्थान की मुख्य लीलाएं कौन- कौन सी हे?

3.2.3 लोकनृत्य

लोकनृत्य जीवन के उल्लास की सशक्त अभिव्यक्ति है एव संप्रेषण के रूप में मानव शरीर का प्राचीनतम उपयोग भी । इसकी प्रस्तुति में सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं सामुदायिक रूप से उजागर होती हैं । भावनाओं की अभिव्यक्ति और भावोद्रेक के लिए मानव को नृत्य एक सहज माध्यम मिला है ।

लोकनृत्य समूह की देन है । देवीलाल सामर ने ठीक ही लिखा है कि 'लोकनृत्य व्यक्ति की देन नहीं होकर समष्टि की ही उपज है । अनादीकाल से मनुष्य अपने आनंद मंगल के समय अंगभंगिमाओं का जो अनियोजित प्रदर्शन करता आ रह है वहीं धीरे- धीरे समष्टि के रूप में आयोजन- नियोजन द्वारा लोकनृत्यों का स्वरूप धारण करने लगा । सामरजी ने लोकनृत्यों की विशेषताएं इस प्रकार वर्णित की हैं-

1. लोकनृत्य सरल, सर्वगम्य और सर्वसुलभ होते हैं ।
2. लोकनृत्यों में अप्रत्यनशील सरलता होती है ।
3. लोकनृत्य स्व- सर्जित होते हैं ।
4. लोकनृत्यों में जनजीवन की परंपरा, उसके संस्कार तथा जनता का आध्यात्मिक विश्वास निहित होता है ।
5. लोकमाध्यम लोकनृत्यों के वैविध्य में साधारणत: एकरूपता होती है।
6. लगभग सभी लोकनृत्य सामूहिक होते हैं ।
7. लोकनृत्य शास्त्रीय नृत्यों की तरह शास्त्रीय नियमों के बंधनों और सीमाओं से परे होते।

देवीलाल सामर ने भारतीय लोकनृत्यों को 5 प्रकारों में विभाजित किया-

1. स्वान्त:सुखाय लोकनृत्य
2. अनुष्ठानिक लोकनृत्य
4. सामाजिक लोकनृत्य
5. मनोरंजनात्मक लोकनृत्य

3. श्रमसाध्य लोकनृत्य

लेकिन भारतीय लोकनृत्यों के अध्येता जगदीशचंद्र माथुर ने भारतीय संस्कृति में विभिन्न धाराओं के सम्मिश्रण को देखते हुए यहां के लोकनृत्यों को किसी एक श्रेणी में रखना कठिन बताया और कहा कि " संसार के अन्य देशों की तरह हमारे देश में भी सबसे अधिक नृत्य काम- धंधों से संबंधित हैं । ये सबसे सरल भी होते हैं जैसे बंगाल और बिहार के संथालों के नाच जिनमें प्रतीकों का अधिक सहारा लिए बिना फसल की बुवाई और कटाई को दर्शाया जाता है । कुछ नृत्यों, का सौराष्ट्र के टिप्पणी नाच के समान, किसी एक धंधे से संबंध है । आसाम की बोडो- कछारी जाति के दिलचस्प कैजामा- पनई नाच में जंगल में पेड काटने या पेड के नीचे से लाल चींटियों को हटाने का अभिनय किया जाता है । शिकार मनुष्य जाति का सबसे पुराना धंधा है और इस पर अनेक नृत्य हैं जिनमें अधिकांश बड़े जोरदार और मरदाने होते हैं । फसल की कटाई एक धंधा है किंतु अकसर पहली कटाई को एक अनुष्ठान या रस्म का रूप दिया जाता है । इसी तरह शिकार उदर पालन का एक साधन होने पर भी युद्ध के भाव से गहरा संबंध रखता है । इस तरह एक लोकनृत्य पर दूसरे लोकनृत्य की छाया पड़ जाती है या उसका मिश्रण हो जाता है । को काम, संस्कार या रीति रस्म का रूप धारण कर लेता है तो उसके आधार पर बने नृत्य में भी एक विशेष अभिप्राय या शिल्प आ जाता है । इन अनुष्ठानिक या रस्मी नृत्यों के अभिप्राय को शहरी दर्शक नहीं समझ पाते क्योंकि वे नृत्य के साथ होने वाले गीतों का अर्थ नहीं जानते । "यों भी आदिवासियों के लोकनृत्य अपनी आदिमगंधी जीवनशैली से सरोबार होते हैं । उनमें जो मादकता, मस्ती और अल्हड़पन दिखाई देता है उसकी ठसक, ठाठ और रंग अनूठा होता है ।

लोकनृत्य के साथ जब उल्लासमयी भंगिमाओं में नर्तक खो जाता है तब सहसा ही गीत की सृष्टि उस नृत्य को और अधिक निखार देती है । इसी प्रकार जब नृत्य-गीत अपने पूर्ण रूप में एक हो जाते हैं तब नाट्य पक्ष साकार हुआ लगता है । नृत्य के समन्वय से नाट्यपक्ष अधिक ओजस्वी और ऊर्जावान बनकर जनता जनार्दन को द्विगुणित आनंद प्रदान करता है । उदयपुर संभाग में आदिवासी भीलों का बहु प्रसिद्ध गवरी ऐसा ही रस्मी- अनुष्ठानिक नाच है जो फसल की पकाई के उपलक्ष्य में भाद्र माह में रक्षाबंधन के दूसरे दिन से प्रारंभ होता है । सवा माह तक यह नाच एक गांव से दूसरे गांव दिनभर होता है जिसमें भील परिवार के बालक से लेकर वृद्ध तक भाग लेना धार्मिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य समझते हैं ।

यों तो देश के विभिन्न प्रांतों में प्रचलित लोकनृत्य कई हैं किंतु मोटे रूप मे इनकी संख्या दो सौ से अधिक ही है । इन लोकनृत्यों की जानकारी देश की जनता को हो सके और सभी नर्तक एक- दूसरे की नृत्य कला से परिचित हो सकें तथा देश की इस महत्वपूर्ण जीवनदायिनी समृद्ध लोकधरोहर को संरक्षण मिल सके, इसी उद्देश्य से सन् 1953 में गणतंत्र दिवस पर प्रधानमंत्री प. जवाहरलाल नेहरू ने देश की राजधानी दिल्ली में लोकनृत्य समारोह का आयोजन प्रारंभ किया था जो तब से प्रतिवर्ष ही आयोजित हो रहा है । निश्चय ही इससे हमारे देश के लोकनृत्य और लोकनृत्यकारो की विशिष्ट पहचान बनी है ।

राजस्थान का घूमर, भवाई तथा चकरी, गुजरात का गरबा एवं डांडिया, पंजाब का भँगड़ा, असम का बिहू जैसे नृत्यों ने अपने-अपने प्रांत की परिधि से बाहर निकलकर व्यापकर परिवेश धारण किया है जो इनकी लोकप्रियता का परिणाम है ।

बोध प्रश्न- 3

1. एकल और समूह लोकनृत्य का अंतर स्पष्ट कीजिए ।
2. राजस्थान का वह कौन सा लोकनृत्य है जिसने राजस्थान के बाहर दूर- सुदूर तक अपनी श्रेष्ठ पहचान दी?
3. 'गवरी ' का पीरचय दीजिए ।
4. 'लोकनृत्य समारोह' पर अपने विचार व्यक्त कीजिए 1

3.2.4 लोकगीत

लोकगीत लोक की धरोहर होते हैं, व्यक्ति की नहीं । कोई व्यक्ति किसी गीत का रचनाकार हो सकता है किंतु लोकगीत का नहीं । लोकगीत केवल शब्द रचना नहीं । वह समग्र रूप में समूह की संरचना है । उसमें शब्द की समूह का स्वर भी समूह का, ताल लय छंद भी समूह का। किसी समूह की स्वीकृति द्वारा, समूह में घुलमिल कर जो गीत अपने विशिष्ट स्वर संगीत में वैशिट्या उत्पन्न करता है वही लोकगीत कहलाता है । यही कारण है कि लोकगीत किसी भी समाज, सभ्यता एवं संस्कृति के दर्पण, रक्षक एवं पोषक होते हैं । जनजीवन की सुखद भावनाओं एवं कमनीय कामनाओं के सहारे इन्हें वाणी का रूप मिलता है । आंगिक क्रियाकलापों के संबल से इनमें रंग निखर आता है और पांवों की थिरकन के सहारे इनमें रूप टपक पड़ता है । इन गीतों का मुख्य उद्देश्य परिवार, समाज को सुखानंद की धारा में अवगाहन करा सद्गृहस्थी एवं सद्समाज किंवा राष्ट्र का निर्माण करना होता है ।

इन गीतों के सहारे न जाने कितने उजड़े एवं उदास मनों को तरबूजी-खरबूजी जीवन मिला है । हृदय पर विरह शिला का गुरुतर भार लिए विरहिनियों ने कुराँजा, मोर, पपैया, बगुला, कौआ, तीतर, हंस और तोते को आंसुओ के अंटावन देकर न जाने कितने संदेश पहुंचाए हैं । नवोढ़ा वधुओं ने यौवन की देहरी में प्रवेश पाते हुए अपनी अंगड़ाइयों की लेखनी से न जाने. कितनी ऋतु पातिया लिखी हैं । युवतियों ने न जाने कितनी बार इन्हें अपने कल कंठों पर गाकर सरस राग रति रंग की पिचकारियां छोड़ी हैं । विस्मृतियों में खोते हुए वृद्धाओं ने ओखली बनी आंखों से न जाने कितनी बार अपनी झुरियों से अपने जरापन को टटोला है । दुख और सुख इन गीतों ने उनके दुःख में दुःख और सुख ये सुख की पाती संजोई है । उनकी हार को संबल और जीत को उत्कर्ष देकर आनंद और उल्लास बनाए रखा है । प्रेमी- प्रेमिकाओं की कस- कांचली को जिलाए रखने में जहां एक ओर इन गीतों ने परसियों का पंचमेला लगा छुपे रूस्तम की तरह उनका लव लगाए रखा वहां दूसरी ओर बहुतों ने, इनकी आड लेकर अपना उल्लू सीधा करने में भी कोई कसर बाकी नहीं रखी ।

भवाइयों की भूगल, ढाढ़ियों की सारंगी, भोपों की मशक, थोरियों के रावणहत्थे, आदिवासियों के अलगोजे, लंगों की खड़ताल, मां- बहिनों की लोरियां- प्रभातियां, जच्चों का

बधावा, हालरहूलर, छगन-मगन, बहुओं के कंकू छांटी कंकोतरी मोकलो से लेकर हल्दी के रंग सुरंगे, बना-बनी के नेठने, ढोल में ढमाकों के साथ कूकी को विदा करते बाबुल बूबल तथा अंतिम संस्कारों में मृतक को सुगत देने में ये गीत इतने घुलमिल गये कि हमारा समस्त सामाजिक जीवन ही गीतमय बन गया । गज भर के घूंघट और गज भर की गाती की आड में जो बात कहीं नहीं सुनाई गई वह इन गीतों के माध्यम से आसानी से कही सुनाई जाने लगी । इस प्रकार इन गीतों की घुड़दौड़, शशक की छलांग और सरपट चाल ने हमारे जीवन के पारिवारिक,सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलू को जी खोलकर प्रभावित क्रिया है । लोकगीतों की इतनी विशाल परतें और पट्टियाँ कहाँ देखने को मिलेंगी।

मांझल रात में जन्मे कीके की 'गावो छै गीत बधावो छै ' गीत में सुखदेवी का वंश बढ़ाने, नणद का बधावा लेकर आने, नाई का हालर झेलने, खाती का ढोलिया बनाने, देवर का अजमा लाने, बाईसा द्वारा सूखाने, देराणी- जेठाणी द्वारा खांडने, सास द्वारा लड्डू बनाने तथ सुसरा द्वारा नेक चुकाने तक के प्रसंग उल्लासपूर्ण चटकमटक के प्रतीक हैं । यही नहीं, घुड़ला फेरते राजवी जैसे दादा, महलों बैठी बहू जैसी दादी, झाड़ू लिए भंगी जैसे नाना, भूंडण जैसी नानी तथा घट्टी जैसी नानी तथा घट्टी के नीचे उछलती फुदकती चूहिया जैसी भाभी को लेकर न जाने कितनी गंगा-यमुनाए उमड़ी हैं । सोने चांदी के पर्वत पिघले हैं । माणक पत्रों के चौक पूरे हैं । हीरों के थाल सजे हैं । मोतियों की बरखा हुई है । लालों से आगन लीपा है । कंकू- केशर के पगल्ये पूरे हैं । रत्नों की घूघरी बांटी है । मूंगों की महफिल सजाई है । सोने की सिलाड़ी पर मेंहदी बांटी, रत्नों के कटोरों में घोटी और प्रेम रस की पंगेरी दी है ।

कीका के जन्मोत्सव पर पक्षियों तक ने पांवों में पायल पहनी और पंजों को हीरे मोती की पैंडणियों से सिंगारा है । पांखों पर जवाहरात के जडाव जड़े हैं और घी- गुड़ का जीमण जीमा है । 'किसा ने नगतरा में गीगो जलमियो' पूछने से पूर्व ही अपने अधिकार से उसका नामकरण तक कर दिया है । मोर से एक संवाद देखिए-

मोरया रे मोरया कठै चालो?
(मोर रे मोर कहां चला?)
बागा में
(बागों में)
कां ई लेवा?
(क्या लेने?)
अजमो
(अजवाइन)
कणी मंगायो?
(किसने मंगाया?)
नानी भाभी
(छोटी भाभी ने)

कां ई व्यो?

(क्या हुआ?)

कूकल्यो

(कूका, बच्चा)

नाम काई?

(नाम क्या?)

भगल्यो

(भगल्या)

नानी भाभी और भगल्ये का यह परिवार समस्त भूलोक का परिवार है । नानी भाभी का यह भगल्या समस्त भूजीवन का भगल्या है और नानी भाभी का यह बांसों उछलता आनंद समग्र मानवता का आनंद और उल्लास है ।

'बनो म्हारो रामचंद्र अवतार बनी तो म्हारी सीता जानकी' के आदर्श को लेकर बना-बनी के ब्याह रचाए जाते हैं । चांदे बैठी चिडकली अपना सुरंगा पीहर छोड़ प्रियतम के परिवार में नया जीवन प्रारंभ करती है। अपने श्वसुरग्रह के सभी सदस्यों को आभूषणों के रूप आदर्श मानती हुई बहू सास से कहती है - ' सासु गेहणा नैं काई पूछी, गैहणौ ओ म्हारो सै परवार' और एक -एक सदस्य की उपमा देती हुई कहती है- 'श्वसुर गढ़ के राजवी, सास रत्नों की भंडार, जेठ बजूबंद, जेठाणी उसकी रूम, देवर हाथीदांत का चूडूला, देराणी उस चूडूले की मजीठ, नणदल कसूमल कांचली, नणदोई गजमोतियो का हार, पुत्र घर का चानणा, पुत्रवधू दीपक की लौ, पुत्री हाथ की मूंदड़ी, जंवाई चंपे का फूल, पति सिर का सेवरा और वह स्वयं शैध्या की सिणगार ।

लेकिन सास के दुःखों के बखान भी कम नहीं मिलते । कुएं पर पानी भरने गई बहू जब देरी से लौटी तो पूरे घर में मार धड़ाधड़ मच गई । सास ने तीर छोड़ा- 'गया घराणा की आई । जेठ ने जम्हाई लेते कहा- 'उडवादो भाई राटकरीटा । 'जेठाणी गर्व करती बोली- ' परणाइंदूं सैंस लुगाई । ' देवर ने रोष बताया- ' क्यूं मारो रे भाई कसाई?' देराणी ने व्यय कसा- 'काई आकड़ा रे लटके लुगाई । ' पति ने थोड़ा सा पक्ष लिया तो मां कड़कती बोली- ' तेरी राधा यदि इतनी तुझे प्यारी है तो लेजा इसे तुर्रा बनाकर टांग दे।

मृत्यु जीवन का अंतिम संस्कार है । मरने के बाद मृतात्मा को सुगत नहीं मिलती तब तक उसका भंवरा बेचैनावस्था में भटकता रहता है । उसे नाना प्रकार की यातनाओं से गुजरना पड़ता है । ' ऊंचो जाऊं तो रामजी कागा म्हानै टींचै नीचे जाऊं तो कीड़ा खाय' जैसी स्थिति से वह त्रिशंकू ही बन रहता है । लोकगीतों में ऐसे वर्णन भी हैं जब मृत्यु शैथ्या पर पड़े व्यक्ति को गृह-परिवार की मोह ममता माया आदि की चिंता से मुक्त होने की सीख दी जाती है ताकि उसे पुनर्जन्म न लेना पड़े ।

जीवन के जितने भी पक्ष हो सकते हैं, लोकगीतों ने उन सभी पक्षों को अपने में संवारा है और हारे को संबल, टूटते को हिम्मत और रोते को ढांढस बंधाया है । इन गीतों के माध्यम से मनुष्य ने जीवनी शक्ति प्राप्त की है । भारी होते परिश्रम को हल्का किया है । शौर्य जगाया

है और निर्भय जीवन जीने की संजीवनी ली है । समाज को उन्नत और मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने के लिए गीतों का यह लोक लुप्त न हो, इस ओर हमारा चिंतन सतत प्रवाही होना परम आवश्यक है।

विभिन्न विद्वानों ने लोकगीतों का विविध दृष्टियों और कोणों से वर्गीकरण किया है । वर्गीकरण का यह आधार संस्कार, ऋतु, व्रत, उपासना, जाति, श्रम, रसानुभूति, धार्मिक विश्वास, सामाजिक सरोकार आदि रहे हैं । पं. सूर्यकरण पारीक, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल, डॉ. श्याम परमार, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, डॉ. विद्या चौहान, देवीलाल सामर प्रमृति विद्वानों ने लोकगीतों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है । सूर्यकरण पारीक ने तो लोकगीतों के वर्गीकरण के 29 आधार लिए हैं । हमारी दृष्टि में निम्नांकित चार बिंदु लोकगीतों के वर्गीकरण के लिए उपयुक्त हैं -

1. संस्कार संबंधी लोकगीत
2. सामाजिक लोकगीत
3. धार्मिक. लोकगीत
4. मनोविनोद के लोकगीत

इस तरह लोकगीतों की प्रभावना और अतिव्याप्ति बनी है । विभिन्न प्रदेशों, देशों, जातियों और वर्गों में गाए जाने के बावजूद लोकगीतों में भात साम्यता देखी जा सकती है । सरलता, समरसता और सरसता के साथ ही मधुरता और लयबद्धता लोकगीतों के गुण हैं, इसलिए वे जब कभी उद्घाटित होते हैं, शीघ्र ही कंठस्थ हो जाते हैं । इसीलिए जन-जन की वाणी भी कहे गए हैं । सैकड़ों - हजारों वर्षों तक नदी के नीर के तरह ये गीत जनजीवन में आलोड़ित- विलोड़ित होते रहे। इनमें हेरफेर हुए । नाना विचारों ने भी इनमें स्थान पाया किंतु इनकी गति में व्यतिक्रम नहीं पड़ा ।

बोध प्रश्न- 4

1. लोकगीत सर्वग्राह्य सरल और सुबोध क्यों हें?
2. आप राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय लोकगीत किसे व क्यों मानते हैं?
3. आपको जो लोकगीत अच्छा लगता है उसे लिखिए ।
4. लोकगीत जन- जन की वाणी कहे गए हैं? सिद्ध करें

3.3 लोकमाध्यमों का भूत और वर्तमान

लोकमाध्यम ग्राम्य संस्कृति की उपज है । हमारा देश गांवों का देश रहा है । उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक गांवों और ग्रामीणों का ही प्रसार यहाँ देखने को मिलता है । ऐसे में कहा जा सकता है कि इन लोकमाध्यमों का इतिहास बहुत समृद्ध रहा है । प्रत्येक रस्म, प्रत्येक रिवाज के बारे में हमारे यहाँ इनकी उपलब्धता यह सिद्ध करती है कि हमारा अतीत काल कितना लोकदृष्टि-संपन्न रहा है । हमारे धर्म ग्रंथों में विविध अवसर पर मंगल गान के निर्देश इस बात के द्योतक है कि अतीत में हमारा जीवन लोक की समृद्ध रसधारा से कितना शक्ति संपन्न था ।

सिंधु घाटी की सभ्यता से मिली नर्तकी की मूर्ति इस बात पर प्रकाश डालती है कि तब भी हमारे गीतों पर नर्तन का कैसा सुशोभन था । वीणा, बांसुरी और ढोल का ऋग्वेद में उल्लेख

मिलता है । ये संगीत वाद्य है । त्यौहार और अन्य खुशी के अवसरों पर नृत्य व गान अनवरत होते हैं । स्त्रियां वीणा और झांझर के साथ नृत्य और गान में अपनी दक्षता का प्रदर्शन करना अत्यधिक पसंद करती थी । वैदिक युग में संगीतज्ञों को जीवन के आनंद का वर्णन करने में विशेष दिलचस्पी थी । गहस्थपन की धुरी वधू के प्रथम बार ससुराल आगमन पर ऋग्वेद (10-85) में दी गई भलावण का आदर्श स्वरूप देखिए जिसमें बहू को कहा गया है-

"कुदृष्टि विहीन हो । अपने पति को पीड़ा न पहुंचाओ । हमारे पशुओं के प्रति दया भाव दिखाओ। मैत्रीपूर्ण व्यवहार करो । स्फूर्तिवान हो और प्रसविनी हो । देवताओं से प्रेम करो । सुखमय जीवन व्यतीत करो एवं हमारे चतुस्पदों का कल्याण करो ।

राजस्थान में नवोढ़ा बहू के आगमन पर इन्हीं भावों से ओत- प्रोत महिलाओं द्वारा यह गीत गाया जाता है, जिसमें वधू को कहा गया है-

लाड़ी ओ घर वो वर मांगजे
लाड़ी दशरथ जी जेड़ो ससुर मांगजे
लाड़ी कौसल्या जेड़ी सासु मांगजे
लाड़ी मोटो सो घर मांगजे... ।
लाड़ी रामचंदर सा भरतार मांगजे ।
लाड़ी लक्षमण सरीखा देवर मांगजे ।

अर्थात् हे बहू! तुम यह घर वह वर मांगना । दशरथ- से श्वसुर, कौशल्या- सी सास, रामचंद्र- सा पति, लक्ष्मण से देवर और बढ़ा घर मांगना ।

लोकजीवन की ये ही विशेषतायें कालांतर मे उत्तरवैदिक काल, महाकाव्य काल, सूत्र व मीत काल, मौर्यकाल आदी मे भी मिलती है । महाकाव्य काल में पेशेवर - मागध, गायक बल वंशबाचक कविताऔ, गीतो एवं गाथाऔ का गायन वादन और नर्तन करने लगे थे । किन्तु स्त्रियाँ भी यथेस्ट मंगलगान करती थी । इन मागध और अन्य पेशेवर गायको ने ही रामायण महाभारत का प्रचार सुदूर कंबोडिया तक किया जिससे वहां की लोक भाषाओं में भी इनका गीतबद्ध प्रसार होने लगा । मौर्यकाल में लोककलाओं, लोकमाध्यमों का दुतगति से विकास हुआ। सम्राट अशोक ने लोक भाषा में ही अपने आभिलेखों को उत्कीर्ण करवाकर सिद्ध किया कि लोकोपकार, लोकशिक्षण और लोक कल्याण के लिए उसकी भाषा का ही सहारा श्रेयस्कर है । जातक कथाओं में नृत्यभवन के उल्लेख है और तब आज की तरह नृत्य शास्त्रीय नियमों के बन्धन में नहीं बंधे थे।

इसमें अतिशयोक्ति नहीं कि तब लोकनृत्य लोकनाट्य का ही कोई स्वरूप था । स्त्रियों के समुदाय में गणिकाएं ललित कलाओं का प्रचार करती थीं । पुत्र जन्म के अवसर पर आनन्दोत्सव में लोकगीत गाए जाते थे । स्त्रियाँ अपने अनुसार समूह में छंद रचनाएं करती थीं । 'थेरी गाथा' में ऐसे छंद आज भी है जो लोक रचनाओं के ज्यादा निकट हैं । नृत्य और संगीत चौसठ विधाओं में शुमार थे एवं मौर्यकाल में सभी श्रेणियों के नर नारियों को इनका अभ्यास करने का आदेश था ।

गुप्तकाल में अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि दक्षिण की स्त्रियाँ संगीत और नृत्य में प्रवीण थीं । वे सार्वजनिक रूप से इन कलाओं में अपनी निपुणता का प्रदर्शन करती थीं

। इस काल में सूत मागध अपने राजाओं की यश गाथाएं गांव- गाव गाते और उनका प्रदर्शन भी करते थे । राजाओं की लोकप्रियता को बढ़ाने में उन्होंने बड़ा योगदान दिया । इस काल में लोकसाहित्य का संकलन भी होने लगा था । पारंपरिक कथाएं प्रचारों के रूप में सामने आई. वहीं पंचतंत्र जैसी कृति में संस्कृत गल्प संगृहीत हुई । हितोपदेश में प्राचीन अनुभव तथा अन्य चिकित्सकीय ग्रंथों में लोक चिकित्सा पद्धतियों का संग्रह हुआ । मंदिरों और अन्य वास्तु कलाओं से ज्ञात होता है कि तब संगीत और अन्य लोक विधाएं समाज में प्रतिष्ठित हो चुकी थीं और राजाश्रय प्राप्त कर चुकी थीं । गुप्तकाल तक रंगमंच का पर्याप्त विकास हो चुका था । इसी काल में शास्त्रीयता का प्रकाश होता है तथा लो क और शास्त्र का स्पष्ट भेद सामने आने लगता है ।

यद्यपि सल्तनतकाल में लोकसाहित्य को थोड़ी चोट पहुंची तथापि मिश्रित संस्कृति ने इस धारा को एक नया मोड़ दिया । मध्यकाल के भक्ति आंदोलन के साथ फिर से लोकजीवन में भजन- कीर्तनों की व्याप्ति लोक के उत्थान को दर्शाती है । इस काल में वीर गाथाए भी खूब लिखी गई । साहित्यकारों ने इसी आधार पर इसे वीर गाथाकाल भी कहा है । कई लोक भाषाओं - मराठी, डिंगल, गुजराती, बंगाली, अवधी, ब्रज आदि में पदों के साथ गीत लिखे जाने लगे जो आज भी इसी मस्ती, इसी धुन और श्रद्धाभक्ति के साथ गाए जा रहे हैं । इनमें कई गीत- पद ऐसे हैं जो अनाम रचनाकारों की साख बढ़ा रहे हैं जबकि कई अज्ञात होते हुए भी ज्ञात रचनाकारों के नाम से यशस्वी बने हुए हैं ।

संस्कृति के ज्ञान के संग्रह एवं अध्ययन की दिशा में नवचेतना 19वीं शताब्दी में आई । सर्वप्रथम कर्नल टॉड ने एनेल्स एंड एटीक्विटीज ऑफ राजस्थान नामक अपने ऐतिहासिक ग्रंथ में वर्ष 1829 में लोकवार्ताओं के संकलन और प्रकाशन का कार्य प्रारभ किया । बाद में रायल एशियाटिक सोसायटी के मुखपत्रों में लोकसाहित्य का न्यूनाधिक प्रकाशन हुआ । इसका श्रेय जे. एल्वर्ट, सर रिचर्ड टैंपुल, मिस फ्रेजर, चार्ल्स ईस ग्रोवर, डाल्टर आदि को है । जी. एच. दामंत ने इंडियन एंटिक्वैटी नामक पत्रिका में लोकसाहित्य पर अनेक निबंध लिखकर इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की । इस क्षेत्र में प. रामनरेश त्रिपाठी, देवेंद्र सत्यार्थी, डा. श्याम परमार आदि का यथेष्ट योगदान रहा ।

आज लोक के सभी माध्यम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की चपेट में हैं जो शहरी सभ्यता के माध्यम से तो पूरी तरह पलायन ही कर चुके हैं । देहातों में जरूर इनकी कुछ पहचान बनी हुई है तथापि उनमें भी विकृतियां घर करती जा रही हैं । हालांकि भारतीय लोक कला मंडल (उदयपुर). जवाहर कला केंद्र (जयपुर) तथा विभिन्न राज्यों में स्थापित सांस्कृतिक केंद्रों ने इनके संरक्षण एवं संवर्धन उन्नयन में बहुत कुछ कार्य किया, परंतु ऐसे और अधिक, अधिकाधिक प्रयास अपेक्षित है।

3.4 लोकमाध्यमों का ग्रामीण जनसंचार में योगदान

पारंपरिक या लोकमाध्यम देशवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, शैक्षिक और सामाजिक जीवन के अति निकट होते हैं । उनकी विषयवस्तु, प्रस्तुति, प्रदर्शनधर्मिता देहात से ही संपृक्त होती है । ऐसे में लोकजीवन में वे रामबाण की तरह काम करते हैं । रोचकता और

अपनापन भी इनमें द्रष्टव्य है । मैबब्राहट आयोग 1988 का मत है कि 'जन सामान्य के प्रति अपने व्यापक आकर्षण और लाखों निरक्षर लोगों के गहनतम संवेगों को छूने की दृष्टि से गीत और नाटक का माध्यम अद्‌वितीय होता है।

आज भी राज्य सरकार के आई. ई. सी. (सूचना, शिक्षा, संचार) कार्यक्रमों के लिए ये माध्यम प्रभावी भूमिका निभाते नजर आते हैं । गीत और नाटक प्रभाग (सूचना और प्रसारण मंत्रालय), क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी व अन्य विभिन्न गैर सरकारी संस्थान लोक कलाकारों के माध्यम से ही विभिन्न सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों के प्रचार में जुटे हुए हैं। कई बार लोकमाध्यम ने अन्य खर्चीले माध्यमों से अधिक अपनी प्रभावना को प्रदर्शित किया है। इन माध्यमों में कठपुतली कला एवं लोक चित्रकला का माध्यम भी कम उपयोगी नहीं है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने भारत के प्रमुख लोकमाध्यमों के बारे में जाना। लोककथा लोक नाट्य लोकनृत्य लोकगीत ये प्रमुख माध्यम हैं।

लोकमाध्यम ग्राम्य संस्कृति की उपज हैं। इन लोकमाध्यमों का इतिहास बहुत समृद्ध रहा है । आज लोक माध्यमों पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का व्यापक प्रभाव पड़ा है। आज देहातों में जरूर उनकी कुछ पहचान बनी हुई है लेकिन शहरों में उनके नाम पर उपहास हो रहा है।

आज आवश्यकता इस बात की है हम लोकमाध्यमों को अपनी धरोहर समझकर उसे सुरक्षित रखें । उनके संरक्षण सवर्द्धन एवं उन्नयन के लिए कुछ रचनात्मक कार्य करें।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. लोकनाट्य : परंपरा और प्रवृत्तियां- डी. महेंद्र भानावत, बाफना प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
2. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन-डॉ. कुलदीप, प्रगति प्रकाशन, आगरा
3. भारतीय पारंपरिक रंगमंच-डॉ कपिला वात्सायन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
4. लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग -डी. श्रीराम शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. दशामाता व्रतकथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ. कविता मेहता का अप्रकाशित शोध प्रबंध
6. राजस्थानी लोकगाथाएं-डॉ कृष्णकुमार शर्मा, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर
7. वीर गाथात्मक राजस्थानी पवाड़े : संरचना एवं लोकपरंपरा-डॉ. उषा कस्तूरिया, लोक प्रकाशन, 4633 गली उमराव, पहाड़ी धीरज, दिल्ली
8. लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाएं-देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर

3.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोककथा और लोकगाथा का भेद स्पष्ट करते हुए दोनों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत कीजिए ।
2. शौकिया रख व्यावसायिक लोकनृत्यों के महत्व पर प्रकाश डालिए ।
3. अपने अंचल में व्याप्त लोकनाट्य की किसी सशक्त विधा की जन भागीदारी का रोचक वर्णन कीजिए ।

4. आज के संदर्भ में पारंपरिक लोकमाध्यमों की उपयोगिता को रेखांकित कीजिए ।
5. 'पारंपरिक लोकमाध्यमों का भविष्य' पर सोदाहरण निबंध लिखिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए -
   अ. लोककथा
   ब. लोकनाट्य
   स. लोक नृत्य
   द. लोकगीत

इकाई 4 मौखिक परंपराएं और लोकमाध्यम

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मौखिक परम्पराएँ

- 4.2.1 लोकवार्ता की परंपरा
- 4.2.2 बात-पोशी की परंपरा
- 4.2.3 आख्यान परंपरा
- 4.2.4 किंवदंती
- 4.2.5 लोकोक्ति

4.3 लोकमाध्यम

- 4.3.1 ख्याल-कुचामनी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, जयपुरी ख्याल
- 4.3.2 तुर्रा कलंगी
- 4.3.3 गवरी
- 4.3.4 रम्मत
- 4.3.5 जयपुर तमाशा
- 4.3.6 फड़
- 4.3.7 जात्रा (बंगाल)
- 4.3.8 नौटंकी (उत्तर प्रदेश)
- 4.3.9 तमाशा (महाराष्ट्र)
- 4.3.10 बिदेसिया (बिहार)
- 4.3.11 भवाई (गुजरात)
- 4.3.12 यक्षज्ञान (दक्षिण)
- 4.3.13 लीला
- 4.3.14 स्वांग (हरियाणा

4.5 सारांश

4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.7 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का विषय है-'मौखिक परंपराएं और लोक माध्यम'। इसमें मौखिक परंपरा और लोकमाध्यमों के परस्पर संबंध को इंगित किया गया है ।

- परंपरा की परिभाषा जान जाएंगे।
- मौखिक परंपराओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

- लोकमाध्यम के मुख्य रूपों से परिचित हो पनाके ।
- जनसंचार में लोकमाध्यमों की उपयोगिता से अवगत होंगे ।
- शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक कुरीतियों के निवारण में मौखिक परंपराओं और लोक माध्यमों के महत्व को समझ सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

भारत मौखिक परंपराओं और लोकमाध्यमों का धनी देश है । मौखिक परंपराओं से वे रीति-रिवाजों और लोक विश्वास अभिप्रेत हैं जो वंशानुक्रम से जनसाधारण के विशिष्ट समूह अथवा समाज में मौखिक परिपाटी के रूप में चिरकाल से प्रचलित हैं ।

पश्चिमी धारणा के अनुसार 'परंपरा' को निम्नरूपेण परिभाषित किया गया है - A tradition is a custom or belief that the people in a particular group or society have practised or held for a long time.

लोक के ऐसे समस्त व्यवहार का, जो परंपरा से चला आ रहा है, लोक प्रमाण के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रमाण नहीं है । मौखिक परंपराओं में हमारे देश में मौखिक कथा कहने, जिसे बात-पोशी कहते हैं, गायन तथा कीर्तन की समृद्धशाली परंपरा रही है । लोगों में जो रीति-रिवाज परंपरा से चले आते हैं, वे लोक-परंपरा कहलाते हैं ।

लोकमाध्यमों में लोक-नाद्यों की उत्पत्ति लोक विश्वास, लोकप्रचलन, धार्मिक रूढ़ियों, जन-परंपराओं, वीर पूजा, मनोरंजन, उत्सव, मांगलिक पर्व तथा शोक के अवसरों आदि धारणाओं के बीच हुई है। लोकनाट्य संपूर्ण भारत में विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं । भारतीय लोक-नाट्यों के कतिपय स्वरूप जो विभिन्न प्रांतों में प्रचलित हैं, इस प्रकार हैं :बंगाल में जात्रा, बिहार में बिदेसिया, उत्तर प्रदेश में नौटंकी, मध्य प्रदेश में मांच, हरियाणा में स्वांग, राजस्थान में रम्मत, ख्याल, तुर्राकलंगी, गुजरात में भवाई, महाराष्ट्र में तमाशा, कन्नड तथा दक्षिण में यक्षज्ञान आदि। लोक माध्यम के इन प्रचलित लोक-नाट्यो में अधिक लोकप्रिय रूपों का परिचय आप इस पाठ में प्राप्त करेंगे।

4.2 मौखिक परंपराएं

मौखिक परंपराओं के अधीन निम्न परंपराएं हैं-

4.2.1 लोकवार्ता की परंपरा

लोकवार्ता का प्रमुख तत्व है परंपरा। जो बातें परंपरा से प्राप्त हुई हैं, वे लोकवार्ता हैं । लोकवार्ता सामान्यतया मौखिक या अलिखित होती हैं । परंतु परंपरा की चीज होते हुए भी यह कहना सही नहीं होगा कि लोकवार्ता सदा मौखिक या अलिखित होती है ।

मौखिक वार्ताओं को लोकवार्ताकारो, भोपा-भोगि से गवाकर लेखबद्ध किया जाता रहा है । उदाहरण के लिए 'कथा सरित्सागर' एक लिखित ग्रंथ है जिसमें लोकवार्ता का भंडार है । बगडावत देवनारायण महागाथा जो लोकवार्ता के रूप में सदियों से ग्राम्य जीवन में प्रचलित रही है, वंशानुगत रूप में भोपों द्वारा गई, बजाई और सुनाई जाती रही है, इसे अब भोपों से सुनकर

लेखबद्ध कर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा चुका है । अत: आज लोकवार्ता के मौखिक पक्ष को प्रधानता देना उसके क्षेत्र को संकुचित करना होगा । इसलिए जहां लाक्षणिक भाषा-तत्व, संगीत, नृत्य तथा चित्र का अध्ययन स्वयं एक स्वतंत्र विषय माना जा सकता है, वहां इनमें मिलने वाले परंपरागत लोक-मानस का स्वरूप लोकवार्ता के अधीन आता है ।

4.2.2 बात-पोशी की परंपराएं

देश में लोक-वार्ता की भांति ही मौखिक कथा कहने की समृद्ध परंपरा रही है । ये मौखिक कथाएं अति प्राचीन काल से लोगों के मनोरंजन का साधन रही हैं । रात्रि के समय चौपाल पर गांव के लोग एकत्र हो जाते हैं और कुशल कथा- वक्ता जिन्हें बात- पोश कहते हैं, कथा सुनाते हैं। बात- पोशी भली- भांति मौखिक रूप से कथा कहने की एक विशिष्ट शैली है । बात-पोश इस. मौखिक कथन शैली में जितने निपुण होते हैं, बात उतनी ही अधिक असरदार होती है । प्राचीनकाल मे कुशल बात- पोशो की राजदरबारों में नियुक्ति हुआ करती थी । उन्हें शादी अथवा अन्य मांगलिक अवसरों पर बात कहने के लिए बुलाया जाता था । राज- दरबारों में इन बात-पोशों को राजकीय सम्मान और विविध पुरस्कार प्रदान किए जाते थे । समाज में इन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था । यहां यह उल्लेख करना भी उपयुक्त होगा कि कुशल बात-पोश की तरह 'होशियार हुंकारिएं अर्थात् बात में हुंकारा देने वाले की भी अपनी महत्ता होती थी । यथावसर अगर बात में हुंकारा नहीं दिया जाता है, तो बात नीरस और एक रूप हो जाती है ।

बात-पोशी के साथ ग्राम्य जीवन में कतिपय ऐसी परंपराएं भी जुड़ी होती हैं जिन्हें अंध-विश्वासी कहा जा सकता है । बीच में एक-एक दिन छोड़कर आने वाले बुखार के लिए एक विशेष मौखिक कथा कही जाती है और लोकमान्यता के अनुसार इस क्या के सुनने के बाद रोगी का बुखार उतर जाता है। इस कथा में हुंकारा देने का चलन नहों होता है। बात-पोश रोगी को चौपाल या अन्य किसी खुले स्थान पर कथा सुनाता है। रोगी के आस-पास खड़े लोग भी यह कथा सुनते हैं, लेकिन हुंकारा नहीं देते। ऐसी मान्यता है कि यदि कोई हुंकारा दे दे, तो उसे बुखार आ जाता है। कथा का अंत होते ही रोगी उठकर वहां से अपने घर की तरफ तेजी से या दौड़कर चला जाता है और उस समय बात-पोश या उसके पास बैठा कोई व्यक्ति रोगी की तरफ जूता फैंकता है। लोक में यह मान्यता प्रचलित है कि अगर यह फैंका गया जूता रोगी को लग गया, तो उसका बुखार नहीं उतरेगा और यदि जूता नहीं लगा, तो बुखार उतर जाएगा।

बात- पोश कथा के बीच में प्रसंगानुकूल पशु - पक्षियों, प्रकृति, सी- पुरुष सौन्दर्य, युद्ध, आखेट वर्णन, नगर- वर्णन आदि से संबंधित पूर्व प्रचलित बंधे -बंधाए वर्णन कथा-प्रसंग में जोड़कर उसका कलात्मक सौन्दर्य बढ़ा देते हैं। ये कथाएं ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक, वीरता तथा प्रेम- परक होती हैं ।

4.2.3 आख्यान परंपरा

हमारे देश में आख्यान परपरा अति प्राचीन है । प्रेम- कथानकों का आधार ग्रहण कर कथा या काल की सर्जना कर उसे आख्यान का रूप देने की परंपरा देश में वैदिक काल से है । यम- यमी तथा उर्वशी- पुरूरवा संवाद प्राचीनतम आख्यान हैं । आख्यानों का मुख्य आधार प्रेम कथाएं रही हैं । पौराणिक काल तथा विशेष रूप से महाभारत काल में ऐसे अनेक प्रेमाख्यान मिलते हैं । महाभारत के आदि- पर्व में दुष्यंत और शकुंतला का अत्यंत मार्मिक प्रेमाख्यान है । महाभारत के ही वन- पर्व में नल- दमयंती की प्रेम कथा का चित्रण है । बौद्धों के पालि साहित्य एव जैनियों के प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य मे अनेक प्रेमाख्यान हैं, जो वैदिक- पौराणिक प्रेमाख्यानों से कई बातों में भिन्न हैं । जैनियों की प्राकृत गाथाबद्ध रचनाओं में अपभ्रंश में रचित धर्म कथाओं में भी कई प्रेमाख्यान हैं । इनमें 'लीलावती' की कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस कथा में मनुष्य-योनि के अतिरिक्त देव- योनि के पात्र भी चित्रित किए गए हैं । आख्यान परंपरा के सभी आख्यानों में प्रेम को सर्वोपरि तत्व के रूप में माना जाता है । प्रेम तीर सभी पोथियों का सार है । प्रेम के बिना ज्ञान का गर्व करना व्यर्थ है । प्रेम ईश्वर का सच्चा स्वरूप है। प्रेम सभी धर्मों का सार है । मुक्ति का द्वार है । इसके बिना जीवन अधूरा है । इन प्रेमाख्यानों में यथावसर कुछ पद्यांशों, दोहों या गीताशो को बार- बार दोहराया जाता है।

4.2.4 किंवदंती

किंवदती, अर्थात् 'किम' (कुछ) तथा वद् (कहना)-कुछ कहना। किंवदंती उन कथाओं के लिए प्रयुक्त है, जो असंबद्ध इतिहास की घटनाओं पर निर्भर होकर लोक-जीवन में बच रही हैं। प्राय: ऐतिहासिक घटनाएं लोकपरक भावनाओं से विकृत होकर ऐसा रूप धारण कर लेती हैं कि उन्हें इतिहास मानने की अपेक्षा किंवदंती ही कहना पड़ता है। किंवदंती के लिए दंतकथा' शब्द भी प्रयुक्त होता है । इतिहास के सूक्ष्म तत्व किंवदंती में निहित होते हैं। संस्कृत में 'उदंत' शब्द का अर्थ है निवेदन, बात अथवा लोकवार्ता । सभवत: 'उ' का लोप हो जाने पर 'दंत' का लोकप्रचलित कथाओं के साथ संबंध जुड़ जाने से 'दंतकथा' का प्रयोग चला। धीरे-धीरे लोकप्रचलित दृष्टांतों के साधन बन जाने पर पूर्वकाल में घटीत प्रसंगों की कथा मात्र हो गया।

4.2.5 लोकोक्ति

लोक विख्यात् किसी कहावत को लोकोक्ति कहते हैं । मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्ति का बहुत महत्व है। लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। लोकोक्ति में जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। लोकोक्तियां ग्रामीण जीवन का नीतिशास्त्र हैं। लोकोक्तियों में मानवीय ज्ञान छिपा होता है जिसमें बुद्धि और अनुभव का समावेश होता है । लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं होती, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है । लोकोक्ति दो प्रकार की होती है - एक पहेली, दूसरी कहावतें । इस प्रकार पहेली भी लोकोक्ति है । लोक-मानस इसके द्वारा अर्थ-गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है । ग्राम्य जीवन में ये बुद्धि-परीक्षा का साधन भी होती है ।

4.3 लोकमाध्यम

लोकमाध्यम के विभिन्न लोकनाट्य स्वरूप हैं, जो देश में विभिन्न प्रांतों में विधागत थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ सिनेमा, टेलीविजन. ट्रांजिस्टर, टेपरिकार्डर तथा प्रचार-प्रसार के आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के बावजूद आज भी लोकप्रिय हैं तथा सदियों से जनसाधारण का मनोरंजन करते रहे हैं । आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य कारणों से इन लोकनाट्यों के कतिपय स्वरूप विलुप्त होने के कगार पर भी हैं । परंतु इन्हें जीवित रखने के प्रयास समाज और सरकार द्वारा निरंतर किए जाते रहे हैं । इन लोक माध्यमों के लोक स्वरूपों की एक विशेषता यह है कि ये नाट्यकला का समग्र रूप हैं जिसमें संगीत, रूपसज्जा. दृश्य संयोजन, नर्तन, वादन, गायन सभी सम्मिलित हैं जो एक विधा के अथवा कला के रूप में स्वतंत्र विधाएं हैं। यही कारण है कि आलेख के साथ नृत्य, गायन और वाद्य वादन का पक्ष इनके मनोरंजन के पक्ष को प्रबल बना देता है। इनमें प्रयुक्त संगीत, गीत और वादन लोकसंगीत पर आधारित होता है, जो जन मानस में संस्कार के रूप में जुड़ा होता है। लगभग इन सभी कला स्वरूपों में पूर्व रंग होता है जिसमें ईश वंदना की जाती है या गणेश के साथ भगवान के शिव की भी आराधना की जाती है, जो कलाओं के देवता हैं। अंत में भरतवाक्य के जैसे सभी की मंगल कामना की जाती है और सुखद अत होता है । पूर्वत के पश्चात सूत्रधार. नट-नटी अथवा भोपा- भोपी के माध्यम से या गायक मंडली के द्वारा कथा प्रसंग दर्शकों के संमुख रखा जाता है।

राजस्थान में लोकनाट्य के अनेक रूप विद्यमान हैं । ये लोक नाट्य इन क्षेत्रों के लोगों के मनोरंजन की आवश्यकता से पैदा हुए हैं और इन्होंने यहाँ के जनजीवन उनके लोकाचार में अपना स्थान बना लिया है।

4.3.1 ख्याल- 18 वीं शती के प्रारंभ से ही राजस्थान में लोक नाट्यों के नियमित रूप से संपन्न होने के प्रमाण मिलते हैं । इन्हें ख्याल कहा जाता था । इन ख्यालों की विषय- वस्तु पौराणिक या किसी पुराख्यान से जुडी होती हैं. इनमें ऐतिहासिक तत्व भी होते हैं तथा उस जमाने के लोकप्रिय वीराख्यान आदि होते हैं । भौगोलिक अंतर के कारण इन ख्यालों ने भी परिस्थिति के अनुसार अलग- अलग रूप ग्रहण कर लिए हैं । इन ख्यालों में खास हे, लौकमाध्यम कुचामनी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल आदि । ये सभी ख्याल अपनी बोलियों में ही भिन्न नहीं है बिल्क इनमें शैलीगत भिन्नता भी है । जहां कुछ ख्यालों में संगीत की प्रधानता है, दूसरों में नाटक, नृत्य और गीतों का प्राधान्य है । गीत प्राय: लोकगीतों पर आधारित हैं या शास्त्रीय संगीत पर । लोकगीतों एवं शास्त्रीय संगीत का भेद ख्याल को गाने वाले कलाकार पर ही आधारित होता है । अगर लोक- कलाकार शास्त्रीय संगीत का जानकार है, तो वह ख्याल संगीत प्रधान होगा । यदि खिलाड़ी, अभिनेता, नृत्य का जानकार हुआ, तो ख्याल नृत्य प्रधान होगा । इन ख्यालों में से कुछेक की विशेषताएं इन प्रकार हैं -

1. **कुचामनी ख्याल-** कुचामन के लच्छीराम नामक विख्यात् लोक नाट्यकार द्वारा इसका प्रवर्तन किया गया । इसने प्रचलित ख्याल परंपरा में अपनी शैली का समावेश किया । इस शैली की विशेषताएं निम्नांकित हैं -

   अ. इसका नृत्य नाटिका जैसा है, जिसमें नाटक के सभी तत्व होते हैं ।

ब. गीत (लोकगीतों) की प्रधानता होती है ।

स. लय के अनुसार ही नृत्य के कदमों की ताल बंदी होती है ।

द. खुले मच (ओपन एयर) में इसे खेला जाता है ।

इसकी कुछ अन्य विशेषताएं भी है; यथा-

1. सरल भाषा
2. सीधी बोधगम्य लोकप्रिय धुनों का प्रयोग,
3. अभिनय की कुछ सूक्ष्म भावाभिव्यक्तिया,
4. सामाजिक गय पर आधारित कथावस्तु का चुनाव

आमराज खिलाड़ी कुचामनी ख्याल जैसी शैली के वर्तमान में ख्यातनामा खिलाड़ी है जिन्हें इस शैली में ख्याल प्रस्तुति के लिए केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है । इस शैली में प्रहसन अंश की प्रस्तुति ने पुखराज खिलाड़ी बहुत प्रसिद्ध हैं।

2. **शेखावाटी ख्याल-** नानूराम इस शैली के मुख्य 'खिलाड़ी' रहे हैं । उनका स्वर्गवास 60 साल पहले हुआ, फिर भी वे अपनी पीछे स्वरचित ख्यालों की एक धरोहर छोड़ गए हैं । उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं -

1. हीर रांझा, 2. हरीचंद, 3 भर्तृहरि, 4. जयदेव कलाली, 5. ढोला मरवण और 6. आल्हादेव

नानूराम चिड़ावा के निवासी थे और मुसलमान थे, किंतु सभी जाति के लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे । अपनी कला के लिए वे आज भी सभी संप्रदायों में याद किए जाते हैं । उनके योग्यतम शिष्यों में दुलिया राणा का नाम लिया जाता है, जो उपरोक्त सभी ख्याल अपने भतीजे बंसी खिलाड़ी के साथ खेला करते थे । बंसी खिलाड़ी आज भी इन ख्यालों को खेलता है।

इन लोक नाट्य शैली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. अच्छा पर संचालन,
2. पूर्ण संप्रेषित हो सके उस शैली, भाषा और मुद्रा मे गीत गायन,
3. वध्वृंध की उचित संगत, जिनमें प्राय: हारमोनियम, सारंगी, शहनाई, बांसुरी, नगाड़ा तथा ढोलक का प्रयोग होता है ।

दुलिया राणा की मृत्यु के बाद उनके पुत्र सोहनलाल तथा पोते बंसी बनारसी आज भी साल में आठ महीनों तक इन ख्यालों का अखाड़ा लगाते हैं । दूलिया राणा जिन्हें गुजरे अधिक अर्सा नहीं हुआ, स्त्री चरित्रों की भूमिका बड़ी कुशलता से निभाते थे और यह क्रम उन्होंने 80 वर्ष की अवस्था तक जारी रखा । वे जितने अच्छे गायक थे उतने ही अच्छे नर्तक भी थे । शेखावाटी के पूरे इलाके में दुलिया के ख्याल बहुत लोकप्रिय हैं । उनके ख्यालों के गीतमय संवाद उन्हें साहित्यिक तथा रंगमंच के बहुत अनुकूल बनाते हैं । इस इलाके के हजारों-लाखों लोग इन ख्यालों को मुफ्त में देखते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं । दूलिया राणा के परिवार के लोग ही इन ख्यालों में होने वाले व्यय को निजी तौर पर वहन करते हैं और खिलाड़ियों को स्वयं पारिश्रमिक भी देते हैं । इन ख्यालों के खिलाड़ी प्राय: मिरासी, ढोली और सरगडाओं में से ही होते हैं, परंतु जो अन्य जाति के लोग इसमें शरीक होना चाहें तो उन पर कोई पाबंदी नहीं है

। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन जातियों के अलावा भी अन्य गैर-पेशेवर जाति के लते केवल मनोविनोद के लिए भी इन ख्यालों को अपने स्तर पर भी संपन्न करते हैं ।

3. जयपुरी ख्याल- यद्यपि सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती-जुलती है, परंतु जयपुरी ख्याल की कुछ अपनी विशेषताएं हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियां भी निभाती हैं ।
2. जयपुरी ख्याल में नए प्रयोगों की महती संभावनाएं हैं ।
3. यह शैली रूढ़ नहीं है, मुक्त है. तथा लचीली है ।
4. इसमें संवादों, कविता, संगीत, नृत्य तथा गायन व अभिनय का सुंदर समानुपातिक समावेश है।

भूतपूर्व जयपुर रियासत के गुणिजनखाना के कलाकार जयपुरी ख्यालों में हिस्सा लिया करते थे । इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल निम्नांकित हैं-

1. जोगी-जोगन, 2. कान-गूजरी, 3. मियां-बीबू 4. पठान, 5. रसीली तबोलन।

सन् 1981 में ' ख्याल भारमली' के कथ्य पर नई शैली में एक नाटक लिखा गया । इसके लेखक राजस्थान के प्रयोगवादी नाटककार हमीदुल्ला हैं । यह नाटक राजस्थान के अलावा हैदराबाद, बंगलौर, मद्रास, मुंबई, दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों पर खेला गया । इसके बहुरंगी लोक वातावरण के कारण इसे सभी स्थलों पर पसंद किया गया तथा कुछ प्रांतीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ ।

4.3.2 तुर्रा कलंगी- मेवाड़ के शाह अली और तुकनगीर नाम के दो संत पीरों ने 400 वर्ष पहले इसकी रचना की और इसे यह नाम दिया। 'तुर्रा' को महादेव 'शिव' और 'कलंगी' को ' पार्वती' का प्रतीक माना जाता है तुकनगीर 'तुर्रा' के पक्षकार थे तथा शाह अली 'कलंगी' के । इन दोनों खिलाड़ियों ने 'तुर्रा- कलंगी' के माध्यम से ' शिव'-शक्ति' के विचारों को लोक जीवन तक पहुंचाया। इनके प्रचार का मुख्य माध्यम काव्यमय संरचनाएं थीं, जिन्हें लोक समाज में ' दंगल' के नाम से जाना जाता है । ये ' दंगल' जब भी आयोजित होते हैं तो 'दोनों पक्षो' के खिलाड़ियों को बुलाया जाता है और फिर इनमें पहर-दर-पहर काव्यात्मक संवाद होते हैं । इन काव्यात्मक संवादों के नित नए-नए रूप ग्रहण करने से शिव शक्ति दर्शन का लोक जगत् में उच स्तरीय काव्यात्मक संवाद प्रचलन में आया है।

'तुर्रा कलंगी' बहुत लोकप्रिय हुआ है और यह संपूर्ण राजस्थान तथा मध्यप्रदेश मे खेला जाता है । इस प्रकार इसका विस्तार मध्यप्रदेश तक भी है । ' तुर्रा कलगी' संबंधी सबसे पहले खेलै गए ख्याल का नाम 'तुर्रा कलंगी का खयाल' था। तुर्रा कलंगी के शेष चरित्र प्राय वही होते है जो अन्य ख्याली में होते है । फिर निम्नांकित विशिष्ट बातें इसकी उल्लेखनीय हैं-

अ. इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक किस्म की है ।

ब. इसमें रंगमंच की भरपूर सजावट की जाती है ।

स. नृत्य की कदम ताल सरल होती है ।

द. लयात्मक गायन जो, कविता के बोल जैसा ही होता है ।

इ. यही एक ऐसा लोकनाट्य है जिसमें दर्शक के भाग लेने की सर्वाधिक संभावनाएं मौजूद होती हैं।

'तुर्रा कलगी' के राजस्थान में मुख्य केंद्र हैं, घोसूंडा, चित्तौड़, निंबाहेड़ा तथा मश्यप्रदेश में नीमच । इन स्थानों ने 'तुर्रा कलगी' के सर्वश्रेष्ठ कलाकार दिए हैं जैसे चेतराम, घोसूंडा का हमीद बेग, जग पयाल ताराचंद तथा. ठाकुर ओंकारसिह आदि।

इन तुर्रा कं गी खिलाड़ियों में 'सोनी जयदयाल' बहुत ही विख्यात एवं प्रतिभाशाली था । उसके खेल आज भी प्रसिद्ध हैं । उसकी मृत्यु के बाद भी इन क्षेत्रों के लोग उसके बोलों एवं संवादों को बहुत इज्जत देते हैं।

'तुर्रा कलंगी' में 20 फीट ऊंचाई के दो अलग- अलग मच आमने- सामने बनाए जाते हैं । इसके दो मुख्य खिलाड़ी अपने - अपने मंचों पर आते हैं । ये मंच सुंदर ढंग से सजे होते हैं । इन्हें, फूल-पत्तियों तथा चित्रकारी से, छज्जों आदि से अलंकृत किया जाता है-यह सजावट राजस्थानी शैली की होती है । इसमें चंग नामक लोकप्रिय वाद्य बजाया जाता है । इसके संवादों को 'बोल' की संज्ञा दी जाती है और ये काव्यात्मक होते हैं । इसके दो बोल उदाहरण के तौर पर नीचे दिए जाते हैं-

सवाल तुर्रा : महादेव विकराल रूप ले,
जोत चंद्रमा नजर पड़ी
पार्वती और गंगा लड़ती
इन दोनों में कौन बडी?
जवाब कलंगी : मिथ्या सायरी करते हो,
बातें करते हो बड़ी-बड़ी
पार्वती और गंगा दोनों
बतलाओ किस रोज लड़ी?

4.3.3 गवरी- मेवाड़ में भीलों का यह सामुदायिक गीत- नाट्य अत्यंत चित्ताकर्षक होता है एव पारंपरिक रीति- रिवाज से युक्त होता है । इसमें प्रयोग किए जाने की बहुत संम्भावनाएं हैं । इसका सांगीतिक लय तथा गीतात्मक रूप प्रयोग के अनुकूल है । गवरी का संचालन एवं नियंत्रण संगीत द्वारा होता है ।

राजस्थान के अरावली क्षेत्रों में रहने वाले भील, प्रत्येक वर्ष 4० दिनों का गवरी समारोह, उदयपुर शहर के आसपास के क्षेत्र में आकर संपन्न करते हैं । यह समारोह मानसून की समाप्ति के अवसर पर किया जाता है । इस समारोह का रूप रंगमंचीय होता है । यह सांस्कृतिक, कलात्मक एवं रंगमंचीय अभिनय, तीनों ही दृष्टि से अत्यंत समृद्ध लोक नाट्यशैली है । भीलों जैसे आदिम कबीलों द्वारा अभिनय हर दृष्टि से उत्कृष्ट यह आयोजन विस्मय में डाल देता है।

राजस्थान की आदिम जातियों में से एक, भील जाति राजस्थान के अरावली क्षेत्र मे प्राचीनकाल से निवास करती है । इसकी शौर्यपूर्ण गाथाएं, इनकी रंगीनी संस्कृति की धरोहर है। हिंदू पुराण गाथाओं के सम्मिश्रण से बना भील समुदाय का यह गवरी लोकनाट्य, इस आदि

समुदाय की ऐतिहासिक परंपरा को उजागर करता है और सामुदायिक सीमाओं के बाहर जाकर चिरकाल की परंपराओं के अंगीकार का यह अपने आप में एक सुंदर दृष्टांत बन गया है।

अगस्त के महीने मे रक्षाबंधन के दूसरे दिन, भील और भोपा जाति के लोग किसी मंदिर के आगे इकट्ठे होते हैं और देवी 'गवरी' का आह्वान करते हैं । वे देवी से उनका आतिथ्य ग्रहण करने की मनौती करते हैं । धान्य बीज, प्रतिमा पर फैंककर चढ़ाए जाते हैं । यदि ये प्रतिमा के दाहिनी ओर गिर जाते हैं तो इसे माता 'गवरी' की स्वीकृति माना जाता है, परंतु बायीं ओर गिरने पर इसे देवी की 'मनाही' माना जाता है । अब यदि देवी का उत्तर हां में है तो व्यापक स्तर पर समारोह की तैयारियां शुरू हो जाती हैं । लकड़ी के मुखौटों, आदिम रूप सजा का साजो- सम्मान, जवाहरात, वेशभूषा तथा रंगमंच की सामग्री समारोह के लिए एकत्र की जाती है ।

मंदिर के सामने समारोह के निष्पादन के लिए बांस गाड़ दिया जाता है तथा प्रतिदिन कई प्रकार के पारंपरिक लोक नाट्य दर्शकगणों के सम्मुख श्रंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं । केंद्र में गाड़ा गया लट्ठा इन नाट्य का आधार बिंदु होता है । यह सांसारिक लोगों व देवतागणों के बीच की धुरी के रूप में कार्य करता है । जब देवी की आत्मा इस लट्ठे से नीचे आती है तो न केवल खिलाड़ी अपितु दर्शकगण भी अभिभूत हो जाते हैं ।

गवरी की कथा में कथानक या सहकथानक क्रमबद्ध नहीं होते, परंतु फिर भी मूल गाथा से इनका संबंध होता है और उसके साथ तादात्म्य दिखाना ही इनका लक्ष्य है । ये बिखरे हुए कथानक, युद्ध, पराजय, मृत्यु तथा अन्ततः जीवप्रमा के पुनर्जीवित हो उठने से सबद्ध होते हैं । यह पुनर्जीवन, देवी की ही कृपा से मिलता हुआ दिखलाया जाता है । गवरी के कथानक को बोलावणी कहते हैं ।

'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' में दीक्षित भानु भारती ने 'पशु गायत्री ' नाम का एक नाट्य अनेक बार मंचित किया है । यह प्रयोग अपनी कलात्मक अभिव्यंजना के लिए विख्यात् है । इस नाट्य विधा का माध्यम इतना जीवंत है कि इसे शिक्षा और विकास के कार्यक्रमों से भी जोड़ा जा सकता है ।

गवरी की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. जुलाई, अगस्त के महीनों में ' बूढ़िया देन' की पूजा के अवसर पर ' गवरी' संपन्न किया जाता है।
2. भील अपना घर छोड़कर सामुदायिक समारोह के विचारों से बंधकर ' गवरी ' में भाग लेने आते हैं और 40 दिनों तक लगातार वहां रहते हैं ।
3. गवरी सुबह से शाम तक प्रतिदिन खेली जाती है ।
4. इनमें भाग लेने वाले नर्तक, अभिनेता, गायक सभी उत्साह और उल्लास से भरे होते।

गवरी के कुछेक मुख्य प्रसंग है 1. देवी अबा बादशाह की मवारी, भिन बड़. बनजारा, खाड़ीलया, भूत तथा शेर- सूअर की लडाई । ये सभी प्रसंग प्रतीकार्धक हैं ।

4.3.4 रम्मत- राजस्थान मे बीकानेर मे रम्मतो सा अपना अलग ही रग है । ये कुचामन, चिडाबा और शेखवाटी के ख़यालो से भिन्न होती है। 100 वर्ष पूर्व बीकानेर क्षेत्र मे

होली पद सायन आदि के अवसर पर होने वाली लोक मध्य- प्रीतयोगिंताओ से ही इनका उदभव हुआ है । कुछ लोक कवियों ने राजस्थान के 'सुविख्यात लोक-नायको एव महापुरुषों पर काव्य रचनाएं की थीं । ये रचनाएं, ऐतिहासिक एव, धार्मिक लोक्चरित्रों पर रची गयी। इन्ही रचनाओ को रंगमंच पर मंचित किया गया । इन रम्मतों के नाम इस प्रकार हैं- 1. मनीराम व्यास, 2. तुलसीराम, 3. फागू महाराजा, 4. सूआ महाराज, 5. तेज कवि (जैसलमेरी)

यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि तेज कवि जैसलमेरी रंगमंच के क्रांतिकारी कार्यकर्त्ता थे । सर 1918 में जन्मे इस कवि ने रम्मत का अखाड़ा श्री कृष्ण कंपनी के नाम से शुरू किया । सन् 1943 में उन्होंने ' स्वतंत्र बावनी ' की रचना की और उसे महात्मा गांधी को भेंट कर दी । ब्रिटिश सरकार ने इस पर निगरानी रखी और उनकी गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया । जब तेज कवि को वारंट की सूचना मिली, वह पुलिस कमिश्नर के घर गए और उन्होने अपनी ओजस्वी वाणी से कहा-

कमिश्नर खोल दरवाजा, हमें भी जल जाना है,
हिंद तेरा है न तेरे बाप का
हमारी मातृभूमि पर लगाया बंदीखाना है ।

इससे सिद्ध होता है कि रम्मत और ख्याल के खिलाड़ी सिर्फ मनोरंजन ही नहीं करते थे, बल्कि वे समाज में हो रही क्रांति के प्रति पूरी तरह से जागरूक भी थे । रम्मत को कुछ उल्लेखनीय बातें निम्नांकित हैं-

1. रम्मत शुरू होने से पहले रम्मत के मुख्य कलाकार मंच पर आकर बैठ जाते हैं. ताकि हरेक. दर्शक उन्हें अपनी वेश- भूषा और मेक- अप में देख सके । संवाद विशेष गायकों द्वारा गाए जाते हैं जो मंच पर ही बैठे होते हैं और मुख्य चरित्र उन गायकों द्वारा गाए जाने वाले संवादों को नृत्य और अभिनय करते हुए स्वयं भी बोलते जाते हैं ।
2. रम्मत में मुख्य वाद्य नगाड़ा तथा ढोलक होते हैं ।
3. कोई रंगमंचीय साज- सजा नहीं होती । मच का धरातल थोड़ा- सा ऊंचा बनाया जाता है ।

जो मुख्य गीत गाये जाते हैं उनका संबध निम्नांकित विषयों से हैं -

चौमासा : वर्षा ऋतु का वर्णन
लावणी : देवी-देवताओं की पूजा से संबंधित गीत,
गणपति वंदना : गणपति की वंदना
रामदेवजी का भजन : रम्मत शुरू होने से पहले रामदेवजी का भजन गाया जाता है ।

रम्मत की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उसकी साहित्यिकता है। वाद्यवादक व संगत करने वाले कलाकार रम्मत में स्वयं मनोरंजन का विशेष साधन बन जाते हैं और लोक समाज में इन वाजिन्दों साजियो की बहुत इज्जत होती है ।

रम्मत के शेष तत्व, शेखावाटी ख्याल से मेल खाते हैं । फर्क इतना ही रहता है की जहाँ शेखावाटी ख्याल पेशेवर ख्याल की गिनती में आ गए हैं, रम्मत आज भी सामुदायिक और लोकनाट्य का ही रूप लिए हैं । इनमें कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो, भाग ले सकता है ।

रम्मत के कुछ विख्यात खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार है- स्वर्गीय श्री रामगोपाल मेहता, साई सेवग, गंगादास सेवग, सूरज, काना सेंवग, जीतमल और गींडोजी । ये सभी लीकानेर के हैं । गींडोजी अपने समय के बहुत विख्यात नगाडावादक रहे हैं।

बीकानेर के अलावा रम्मतें, पोकरण. फलौदी, जैसलमेर और आस-पड़ौस के क्षेत्र में खेली जाती हैं। इन रम्मतों में जिन्होंने बहुत लोक ख्याति अर्जित की है वे हैं - रम्मत पूरन भक्त की, मोरध्वज की, डूंगगजी जवाहरजी की, राजा हरिश्चन्द्र और गोपीचंद भरथरी की ।

4.3.5 जयपुर तमाशा- जयपुर में तमाशे की गौरवशाली परंपरा रही है । यह लोकनाट्य अट्ठारवीं शती में महाराजा प्रतापसिंह के काल में शुरू हुआ । इसके खिलाड़ी इस तमाशे का लेकर देश के सुदूर दक्षिणी भाग से यात्रा करते हुए जयपुर पहुंचे । यह परिवार भट्ट परिवार कहलाता है । इस परिवार के लोगों ने ही जयपुर तमाशा में जयपुरी ख्याल और ध्रुवपद गायकी का समावेश किया ।

प. बंशीधर भट्ट इसके मुखिया थे । इन्हें जयपुर राजघराने का संरक्षण भी मिला । यह परिवार अभी भी विद्यमान है और परंपरागत विधि से आज भी तमाशा को लोक मंचन करता है । इस परिवार में गुरु- शिष्य परंपरा फूल जी भट्ट द्वारा स्थापित हुई । फूलजी भट्ट अपनी ध्रुवपद गायकी के लिए प्रसिद्ध थे । इस समय गोपीकृष्ण भट्ट, जो 'गोपीजी' के नाम से जाने जाते हैं; इस परंपरा के निर्वाहक है । वे आज भी 'तमाशा' का हर साल आयोजन करते हैं । इस परिवार में वासुदेव भट्ट एक अच्छे रंगमंच अभिनेता तथा गायक हैं और वे गुरु- शिष्य परंपरा को जीवित रखने में सक्रिय हैं । वासुदेव भट्ट 'गोपीजी' के चचेरे भाई है । 'गोपीचंद' तथा हीर रांझा ' इनके द्वारा खेले जाने वाले मुख्य 'तमाशे ' हैं । ये तमाशे आज भी बहुत लोकप्रिय हैं । तमाशे की मुख्य-मुख्य विशेषताएं निम्नांकित है-

1. भट्ट परिवार द्वारा प्रस्तुत 'तमाशा' महाराष्ट्र के तमाशे से भिन्न है ।
2. संवाद काव्यमय होते हैं तथा उन्हें राग-रागिनियों से निबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है।
3. 'तमाशा' खुले मंच पर होता है, इसे ' अखाड़ा' कहा जाता है ।
4. 4. भट्ट परिवार द्वारा 250 वर्ष पूर्व की इस परंपरागत लोकनाट्य शैली का प्रदर्शन आज तक लगातार हर साल किया जाता है । इसके दर्शक भी वंशानुगत होते हैं ।
5. सारी संगीत रचनाएं राग- रागनियों में निबद्ध होती है ।
6. संगीत, नृत्य और गायन, इन तीनों की ' तमाशे ' में प्रधानता होती है. ।
7. सिनेमा व टी. वी के इस युग में भी, दर्शकों में ' तमाशा' आज भी लोकप्रिय हैं ।

4.3.6 फड़- फड़ भोपो द्वारा खेली जाती है! ये भोपे जल्दी- जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान तक चले जाते हैं । चित्रित फड़ को दर्शकों के सामने खड़ा तान दिया जाता है । भोपा गायक की पत्नी या सहयोगिनी, लालटेन लेकर फड के पास नाचती है और गाती हुई पहुंचती है और वह जिस अंश का गायन करती है, डंडी से उसे बताती जाती है । भोपा अपने प्रिय वाद्य, 'रावण हत्था ' को बजाता हुआ स्वयं भी नाचता गाता रहता है । यह नृत्य-गान

समूह के रूप में होता है । दर्शकगण फड़ के दृश्यों से एवं सहवर्ती अभिनय से बहुत प्रभावित होते हैं और अपने परिवार के लिये इसे देखना, वर्ष की शुभ घटना मानते हैं ।

फड़ से संबंधित दो लोकप्रिय चित्र गीत कथाएं, पाबूजी और देवजी की फड़ें हैं । पाबूजी राठोड़ जाति के महान लोक नायक हुए हैं । इनका समय आज से 700 वर्ष पूर्व था । उनकी गाथा के आज भी राजस्थान में हजारों लाखों प्रशसक हैं । उनके अनुयायी भी हजारों की संख्या में है । पाबूजी को कुटुंब के देवता के रूप में पूजा जाता है और उनकी वीरता के गति चारण और भाटों द्वारा गाए जाते हैं । मारवाड़ के भोपों ने पाबूजी की वीरता के संबंध में सैकड़ों लोकगीत रच डाले हैं और पाबूजी की शौर्यगाथा आज भी लोक समाज में गाई जाती है । एक खास कविता पाबूजी के भोपों के नाम से जानी जाती है । उन्होंने पाबूजी की फड के गीत को अभिनय के साथ गाने की एक विशेष शैली विकसित कर ली है ।

पाबूजी की फड लगभग 30 फीट लंबी तथा 5 फीट चौड़ी होती है । इसमें पाबूजी के जीवन चरित्र को लोक शैली के चित्रों में अनुपम रंगों एव रंग व फलक संयोजन के जरिए प्रस्तुत किया जाता है । इस फड़ को एक बांस में लपेट कर रखा जाता है और यह भोपा जाति के लोगों के साथ धरोहर के रूप में तथा जीविका साधन के रूप में भी चलता है। पाबूजी की दैवी शक्ति में विश्वास करने वाले लोग प्राय: इन्हें निमंत्रण देकर बुलाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इससे उनके बाल-बच्चों की बीमारियां तथा परिवार की भूत-प्रेत जैसी बाधाएं दूर हो जावेगी ।

पाबूजी के अलावा दूसरी लोकप्रिय फड़ 'देवजी की फड़' है । देवजी भी सोलंकी राजपूतों के पाबूजी की ही तरह के वीर नायक थे । देवजी की फड़ के गीत, देवजी के भोपों द्वारा गाए जाते हैं । ये भोपे गूजर जाति के होते हैं । 'जंतर' नामक प्रसिद्ध लोकवाद्य पर 'भोपा' इस फड़ की धुन बजाते हैं । राजस्थान में भोपों के कई प्रकार हैं । वे प्राय: 'रावण हत्था', भपंग तथा जंतर नामक वाद्यों का प्रयोग करते हैं । ये भूमिहीन होते हैं और अपनी जीविका के लिए उन्हें फड़ों के दरसाव पर ही निर्भर करते हैं । ये भूमिहीन होते हैं और अपनी जीविका के लिए उन्हें फड़ों के दरसाव पर ही निर्भर रहना पड़ता है । प्रति वर्ष विजयादशमी (दशहरा) के मौके पर राजस्थान में रोणीचा के पास कोडमदे गांव में एक बड़ा मेला लगता है, यही पाबूजी का मूल स्थान है । यहां आकर भक्तगण हजारों की संख्या में उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । इस मौके पर हजारों फड़ गायक भी एकत्र हो जाते हैं और सब मिलकर सामूहिक रूप से पाबूजी का गीत गाते हैं ।

4.3.7 जात्रा

जात्रा बंगाल का लोकनाट्य है । जात्रा की मंडलियां प्रदेश में गांव- गांव की यात्रा कर इस लोकनाट्य का प्रदर्शन करती हैं । जात्रा के पांच प्रमुख अंग होते हैं -

1. प्रस्तावना, 2. कथा, 3. संवादाभिनय, 4. गीत, 5 नर्तन

जात्रा में सारी कथा गीतों के माध्यम से कही जाती है । इस लोकनाट्य शैली में मंडली का एक दल वाद्य यंत्रों की सहायता से भावयुक्त एवं संवादात्मक गीत गाता है और- दूसरा दल उन गीतों के अनुरूप भूमिका में गीत के भावों के अनुसार अभिनय करता है । संवाद के

अतिरिक्त जितना कथा- भाग होता है, उसे या तो गायक- मंडली गीत द्वारा व्यक्त करती है अथवा एक भावनटी या भावनट कथा- भाग नृत्य द्वारा प्रस्तुत करता है । यह बंगाल की लोकप्रिय नाट्य शैली है । जात्रा के कलाकारों को पर्याप्त सम्मान दिया जाता है ।

4.3.8 नौटंकी

नौटंकी मूलत: उत्तर प्रदेश. का लोकनाट्य है । उत्तरप्रदेश में हाथरस की नौटंकी बहुत लोकप्रिय है। हाथरस के निकट उत्तर प्रदेश की सीमा से लगे राजस्थान के क्षेत्र भरतपुर, धौलपुर तथा उत्तरप्रदेश के ही आगरा और मथुरा के ब्रज क्षेत्र से लगे क्षेत्र में भी नौटंकी के अनेक अखाड़े हैं । नौटंकी में गायन, वादन और नर्तन का अपना महत्व है । कलाकारों की आवाजें बुलंद होती हैं और गायकी में शास्त्रीय पक्ष भी होता है । नौटंकी में नाट्य के सभी तत्व होते हैं । नौटंकी की अन्य विशेषताएं निम्न हैं : -

1. नौटंकी शब्द की उत्पत्ति 'नाटक' शब्द से हुई।
2. नौटंकी में वाद्यवृंद में नौ साज इस्तेमाल होते हैं ।
3. ऐसा कहा जाता है कि प्रारंभ में नौटंकी का नौ टके का टिकट होता था, इस लिए इसे नौटंकी कहते हैं।
4. यह शैली ख्याल, स्वांग और माच लोकनाट्य शैलियों के निकट है ।
5. यह शैली गीत और संगीत प्रधान होती है ।
6. इसमें अति नाटकीय स्थितियों का अभिनय होता है ।
7. नौटंकी छंदबद्ध रचना है जिसमें मात्रिक और वर्णिक दोनों ही छंद इस्तेमाल होते हैं । सवैया, लावनी या कव्वाली और ठुमरी-दादरा के गीतों के छँद भी इसमें शामिल होते हैं । दोहा और बहरेतवील के अलावा नौटंकी का विशिष्ट छंद चौबोला है । दोहा हिन्दी साहित्य में अपने सुपरिचित स्वभाव, संस्कार और बुनावट वाला छंद है जिसमें अक्सर फारसी-बहुल भाषा एक अलग ही रंग पैदा करती हैं, जैसे:
   इक रहते थे जौहरी, गंगापुर दरम्यान
   दुख्तर आला हुस्न की, दी जिसको भगवान
8. नौटंकी में नगाड़े का इस्तेमाल सारे खेल को एक खास लयात्मकता प्रदान करता है ।
9. नौटंकी में उन्मुख लोक-धर्मी गायकी होती है ।
10. कोई भी कथानक हो, नौटंकी की प्रस्तुति में वह समसामयिक देश- काल के बोध को प्रतिबिबिंत करता है ।
11. नौटंकी में समसामयिक समीक्षा की बहुत गुंजाइश होती है और अभिनेता अक्सर आलेख से बाहर की टिप्पणियां करने से अपने को रोक नहीं पाते ।

    नौटंकी में प्रयुक्त किए जाने वाले छंदों के कुछ उदाहरण निम्न हैं -
    आदाबअर्ज हजरात को आए यां पर आप
    बुरी खबर है आ रहा हम लोगों का बाप
    दोहा हम लोगों का बाप आ रहा इसलिए जी घबराया ।
    मैंने आप सभी को यां पर भेद बताने बुलाया ।।

बहुत बड़ा अफसर दिल्ली का इस कस्बे में है आया ।
छुपकर जांच करेगा हम सबकी संदेशा है पाया ।।
चौबोला
राजधानी में इक मेरा हम जुल्फ है
उसने चुपके से मुझ को है इक खत लिखा
खत का मजमून सुनिए जरा ध्यान से
बाद में सारी बातें मैं दूंगा बता ।।
बात दरअसल ऐसी हैं तुम भी सुनो
देखा कल एक सपना था मैंने बुरा ।
चार मोटे गधे थे मुझे सूघते
उनके हाथों में ता एक मोटा छुरा ।।
बहरतवील

नौटंकी के नाटकों में ' रूप बसंत', ' नकाब पोश',' सत्य हरिश्चंद्र', ' राजा भरथरी', ' अमर सिंह राठौड़' आदि प्रसिद्ध हैं । नौटंकी में नव लेखन भी किया गया है । इनमें मुख्य हैं सर्वेश्वर दयाल का ' बकरी' और मुद्राराक्षस का ' आला अफसर' ।

4.3.9 तमाशा (महाराष्ट्र)

तमाशा महाराष्ट्र की लोकनाट्य शैली है । श्रमजीवी कृषक अपने परिश्रम का फल, फसल के रूप में प्राप्त कर आहलादित होकर भावविभोर को उठते हैं। इस माहौल में तमाशा मंडलियों द्वारा तमाशा लोक नाट्य का प्रदर्शन किया जाता है। तमाशा के कथानकों की विषय-वस्तु सामाजिक होती है जिसमें समाज की कुरीतियों पर व्यंग्य किया जाता है। संगीत, नृत्य और गायन के साथ विनोद तमाशा का मुख्य आधार होता है। तमाशा के संगीत में लावणी छंद का प्रयोग किया जाता है।

मराठी नाटक की वैभवशाली सांस्कृतिक परंपरा है। तमाशा मराठी रंगभूमि का मनोरंजन की दृष्टि से अत्यंत लोकप्रिय लोकनाट्य है। आज का मराठी नाटक संस्कृत नाटक की विरासत होते हुए भी संरचना में पाश्चात्य नाटक से प्रभावित है। मराठी के सौ साल के पूर्वार्द्ध पर शेक्सपियर की छाप हैं जिसके नाटकों में वृहद् हाव- भाव, अति- नाटकीय स्थितियां, गीत-संगीत पक्ष प्रबल होता है। तमाशा लोकनाट्य के आधुनिक प्रदर्शनों मे इसकी स्पष्ट छाप प्रतीत होती है। परंतु तमाशा आज भी महाराष्ट्र की अपनी जमीन से जुड़ा एक सशक्त लोकनाट्य है जिसमें अपनी भूमि की गंध होने के कारण आम जन का मनोरंजन करने की असीम क्षमता है। मुख्य रूप से लावणी तथा महाराष्ट्र की लोकधुनों का उपयोग इसकी प्रस्तुति को अधिक प्रभावशाली बना देता है।

मराठी के यशस्वी नाटककार विजय तेंदुलकर के नाटक ' खामोश अदालत जारी हैं, मूल मराठी में शांतता, कॉट चालू आहे)' या 'घासीराम कोतवाल' को तमाशा के प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है।

4.3.10 बिदेसिया (बिहार)

बिदेसिया बिहार के पश्चिमी जिलों आरा और छपरा तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों विशेषकर बलिया, देवरिया का लोकनाट्य रूप है । भिखारी ठाकुर ने ' बिदेसिया' लोकनाट्य शैली को विकसित किया, जिसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार हैं - कोई व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए बिदेस (कलकत्ता, रंगून) जाता है । उसकी पत्नी उसके वियोग के कारण अनेक कष्ट सहन करती है, जैसे गांव के जमींदार की बर्बरता आदि। अंत में किसी बटोही के द्वारा वह अपना दुखद संदेश पति के पास भेजती है, जिसे सुनकर वह अपनी नौकरी छोड़कर घर लौट आता है। बिदेसिया शैली में रचित लोकनाट्यों में इसी कथा को अलग- अलग ढंग से दोहराया जाता है। इसी लोकनाट्य शैली में वह सुप्रसिद्ध लोकगीत उपलब्ध होता है, जो बिदेसिया लोकगीत के नाम से विख्यात् है। चूंकि इस लोकगीत की प्रत्येक पंक्ति में ' बिदेसिया ' का नाम आता है, अत: इस लोकगीत को ' बिदेसिया ' के नाम से जाना जाता है। इस गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं -

'गवना कराई सइया घर बइठवले से अपने चलेले
परदेस रे बिदेसिया।
चढ़ली जवनियां बेरिन मइली हमरी से के मोर
हीर है कलेस रे बिदेसिया । ।
दिनवां बीतेला सइयां बटिया जोहत तौर
रतिया बीतेली जागि-जागि रे बिदेसिया ।
घरी राति गइले पहर रात गइले से धधके करे जवामें
आगि रे बिदेसिया ।।

भोजपुरी परिक्षेत्र में बिदेसिया लोकनाट्य का इतना अधिक प्रचार है कि सैकड़ों की तादाद में ग्रामीण दर्शक इसे देखने के लिए जमा होते हैं। इस लोकनाट्य में सामाजिक बुराइयों, विशेषकर बाल- विवाह और वृद्ध- विवाह की ओर जनता का ध्यान उन्हीं की बोली भोजपुरी में आकर्षित किया जाता है। इसकी भाषा सरस और मधुर होती है। जनसंचार के लोक माध्यमों के रूप में शिक्षा के प्रसार तथा अपनी बात आम जनता तक प्रेषित करने के लिए इस प्रकार के माध्यम अत्यंत उपयोगी और कारगर हैं ।

4.3.11 भबाई (गुजरात)

भवाई गुजरात का लोकनाट्य रूप है । इसका स्वरूप नृत्य- नाटिका जैसा होता है जिसमे नाटक के सभी तत्व होते हैं । गीत और संगीत पक्ष प्रबल तथा संवाद पक्ष इसमें गौण होता है । गुजरात में भवाई अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें पद- संचालन एवं गीत विधान गुजरात के लोकगीतों एवं लोकधुनों के अनुरूप होता है। प्रत्येक वर्ष भवाई करने वाले अपने 'यजमानों ' के पास जाते हैं, जो भवाई के एक प्रकार से संरक्षक होते हैं। उनका वहां हार्दिक स्वागत किया जाता है। 'सगाजी ऑर सगीजी' अन्य विनोदी विदूषकों के साथ इस लोकनाट्य को संपन्न करते हैं। इसका संचालन सूत्रधार करता है।

भवाई की कथा आम आदमी के जीवन संघर्ष से संबंधित होती है। इसमें उच्च और निम्न वर्ग के संघर्ष को भी चित्रित किया जाता है। गुजरात की विख्यात नाट्यकार शांता गांधी ने 'जसमा ओढन' नामक नाटक की भवाई शैली में रचना की है। इसके प्रदर्शन देश से बाहर लंदन और जर्मनी में भी किए गए हैं । इस लोकनाट्य में गुजरात की लोकधुनों, चित्रकारी, लोकनृत्यों का सुंदर समावेश होता है।

4.3.12 यक्षज्ञान (दक्षिण)

यक्षज्ञान दक्षिण की लोकनाट्य शैली है । इसका मैंसूर तथा बैंगलोर में काफी प्रचलन है । इसमें रामायण और महाभारत से संबंधित लगभग पचास लोकनाटक हैं जिनका समय- समय पर प्रदर्शन होता रहता है। इसमें अभिनय के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें देह भाषा का प्रयोग किया जाता है तथा अनेक स्टीथितिया केवल भाव- भंगिमाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं जिनके लिए संकेत स्थिर हैं। इसमें नृत्य मुद्राएं श्रमसाध्य होती हैं। कथकलि की भांति इसमें संपूर्ण कथानक नृत्य एवं गायन के माध्यम से उद्घाटित होता है। प्रारंभ में पूर्व रंग में नटराज अथवा गणेश की वंदना की जाती है । विदूषक द्वारा इस लोकनाट्य में प्रहसन का समावेश किया जाता है, जो अन्य पात्रों अथवा नर्तकों के साथ मंच पर प्रवेश करता है। यक्षज्ञान में सौम्य और रौद्र चित्रों को प्रस्तुत किया जाता है।

कन्नड के नाटककार गिरीश कर्नाड ने अपने कन्नड नाटक ' हयवदन ' में यक्षज्ञान शैली का प्रयोग किया है । यह नाटक ' हयवदन ' के नाम से ही हिंदी में अनूदित होकर खेला गया है । इस लोकनाट्य में मल्ल- युद्ध भी चित्रित किया जाता है । यह लोकनाट्य शैली दक्षिण में आज भी पर्याप्त प्रचलित हैं । इसमें नव- नाट्य लेखन भी किया जा रहा है, जिसने इसे आज भी प्रासंगिक बना दिया है । किसी भी लोकनाट्य विधा को जीवित रखने के लिए यह एक अच्छा लक्षण है कि उसके पूल नाट्य तत्वों की रक्षा करते हुए उसे आज के समय के अनुकूल प्रासंगिक बनाया जाए । यह कार्य नव- नाट्य लेखन के माध्यम से ही संभव है ।

4.3.13 लीला

लीला एक प्राचीन लोकनाट्य है, जो केवल हिंदी प्रदेशों तक ही सीमित नहीं है । लीला की कथा पुराणों या पुराख्यानों से ली जाती है । लीला को ' रासधारियों ' द्वारा अभिनीत किया जाता है । लीलाओं में धर्म और लोकाचार की प्रधानता होती है । इस लोकनाट्य के अभिनेता दल अब कम ही रह गए हैं । इन दलों द्वारा अब ' रामलीला' या ' रासलीलाएं ही की जाती हैं । मथुरा, वृंदावन के क्षेत्र मे अनेक मंडलियां आज भी लीला अभिनीत करती हैं ।

4.3.14 स्वांग (हरियाणा)

लोकनाट्य के विभिन्न स्वरूपों में एक परंपरा स्वांग की भी है । यह परंपरा हरियाणा क्षेत्र में अधिक प्रचलित है । शाब्दिक दृष्टि से स्वांग का अर्थ है, किसी विशेष ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में विख्यात चरित्र या देवी- देवताओं की नकल के रूप में उस चरित्र के अनुकूल रूपसज्जा करना तथा वेशभूषा पहनना। कुछ जन- जाति के लोगों ने स्वांग

भरने का पेशा अपनाया हुआ है । यह एक ऐसी विधा है जिसे ज्यादातर एक ही चरित्र सम्पन्न करता है । आधुनिक प्रचार-प्रसार के माध्यमों के विकसित हो जाने से स्वांग का यह लोकनाट्या रूप शहर से दूर ग्रामीण समाज तक ही सीमित हो गया है। शादी- ब्याह तथा त्यौहारों से अवसर पर या ग्रामीण समाज में दंगल्न आदि अथवा मांगलिक अवसरों पर स्वांग के कलाकार मनोरंजन के लिए स्वांग भरते हैं1

बोध प्रश्न- 1

1. परंपरा किसे कहते हैं? मौखिक परंपराओं से क्या अभिप्रेत है ?
   (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए)
2. लोकवार्ता किसे कहते हें?
3. बात- पोशी की परंपरा का विवेचन कीजिए?
4. आख्यान परंपरा क्या है? (दस पंक्तियों मे उत्तर दीजिए)
5. किंवदंती और लोकोक्ति में क्या अतर हे?
6. लोकमाध्यम क्या हैं और उनका लोक जीवन में क्या स्थान है?
7. विभित्र प्रकार के लोक नाट्यो के नाम बताइए?
8. लोकमाध्यमों में प्रादेशिक लोक संस्कृति का रंग उन्हें अधिक सरस प्रभावी और लोकप्रिय बनाता है क्या आप इस मत से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।

4.4 सारांश

इस पाठ मे आपने पढ़ा की:-

1. मौखिक परंपराएं और लोकमाध्यम भारतीय क्र जीवन का अनिवार्य अंग है।
2. भारत, के प्रत्येक प्रदेश के लोक नाट्यो में संबंधित प्रदेश की कला, लोक संगीत, लोक गीत लोक व्यवहार, लोकन नृत्य तथा लोक संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है।
3. भारत के प्रत्येक प्रांत के लोकनाट्यो में अद्दभुत बुनियादी साम्य है। उदाहरण के सभी "रंग में., शिव वंदना की परंपरा है। सभी लोक नाट्यो का अंत सुखद होता है तथा पटाक्षेप भारत वाक्य बोला जाता है अथवा सभी कल्याण की मंगल कामना की जाती है।
4. लोकमाध्यमों का समय के विकास के साथ अस्तित्व बनाए रखने के उनमें नव लेखन भी किया जा रहा हैं। लोकनाटयो को आज के जीवन मे प्रासंगिक बनाए रखने के लिए यह एक उचित कदम है।
5. .भारत की मौखिक परंपराओं और लोकमाध्यमों का उपयोग शिक्षा के प्रसार, स्वस्थ्य की देख- रेख तथा सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिए प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. राजस्थान गेय प्रेमाख्यान - डी. सोहनदान चारण
2. बातां री फुलवारी - विजयदान देथा
3. राजस्थान की संस्कृतिक परंपरा - राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी

4. हिंदी साहित्य कोश - ज्ञानमंडल, वाराणसी
5. ख्याल भारमली-हमीदुब्रा
6. आला अफसर - मुद्रा राक्षस

4.6 निबंधात्मक प्रश्न

1. मौखिक परंपराए भारतीय लोक जीवन का अभिन्न अंग हैं । उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।
2. लोकमाध्यमों के मुख्य व्यरूपों को चर्चा कीजिए ।
3. परंपरा वंशानुगत होती है । स्पष्ट कीजिए ।
4. देश के सभी प्रांतों के लोकनाट्यों में शिल्पगत अद्भुत साम्य है । उदाहरण देकर विवेचन कीजिए।
5. लोकमाध्यम शिक्षा के प्रसार और सामाजिक कुरीतियों के निराकरण का प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम हैं । निबंध लिखिए ।
6. मौखिक परंपराओं और लोकमाध्यमों को समय के विकास के अनुसार प्रासंगिक बनाए रखने के लिए ऐसे क्या उपाय किए जाने चाहिए जिनसे इनकी लोकप्रियात बनी रहे।

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष